रसज्ञ-रञ्जन

लेखक

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

साहित्य-रत्न भंडार-आगरा।

मूल्य १)

O152 1 M85
G33
3252/05

विषय-सूची

पहले संस्करण की

भूमिका

इस संग्रह मे नौ लेख है। दो लेखो का विषय एक ही होने से उन दोनो का समावेश एक ही—अर्थात् पहिले ही—लेख में कर दिया गया है। इनमे से पहले पाँच लेखों में जिन बातो का वर्णन है, उनका सम्बन्ध कविता और कवि-कर्त्तव्य से है। इस समय, हिन्दी-भाषा के सौभाग्य से अनेक नये-नये कवि कविता करने लगे है। अतएव, आशा है, ये लेख औरो के लिये नही, तो विशेपत. कवियों और कविता-प्रेमियो के लिये अवश्य ही थोड़े-बहुत मनोरजन का कारण होंगे। सातवे लेख मे थोडी सी वैज्ञानिक अथवा ऐतिहासिक खोज होने पर भी, कवियो की हँस-सम्बन्धी समय-सिद्ध बातो पर विचार प्रकट किये गये है। रहे, अवशिष्ट तीन लेख। सो उनमे से एक में एक नवीन और दो में दो प्राचीन कवियो की रसवती कविता के बड़े ही हृदयहारी नमूने हैं। इस तरह, इस छोटी-सी पुस्तक मे, हिन्दी के कवियों और अन्य सरस-हृदय सज्जनो के मनोविनोद की कुछ सामग्री प्रस्तुत की गई है।

इसमें से लेख नम्बर १[२] के लेखक श्रीयुत विद्यानाथ और नम्बर ८ के श्रीयुत भुजङ्गभूषण भट्टाचार्य हैं। इन पिछले महाशय ने अपना लेख लिखने में डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक बॅगला-लेख से कुछ सहायता ली है। नम्बर ७ लेख लिखने मे उनके लेखक ने भी बाबू रामदास सेन के बॅगला-निबन्ध के कुछ भाव ग्रहण किये हैं। इसलिये ये दोनो लेखक बॅगला भापा के इन विद्वानों के कृतज्ञ हैं।

दौलतपुर, रायबरेली
११ अगस्त, १९२०

महावीरप्रसाद द्विवेदी

दूसरे संस्करण के सम्बन्ध में

निवेदन

इस पुस्तक का पहला संस्करण निकले पूरे १२ वर्ष से भी अधिक समय हो गया। उसे जबलपुर के राष्ट्रीय-हिन्दी-मन्दिर ने प्रकाशित किया था। उसके अस्तित्व या अनस्तित्व का पता मुझे कई वर्षों से कुछ भी नहीं। अतएव इस पुस्तक के प्रकाशन और प्रचार का काम, विवश होकर मुझे अब आगरे के साहित्य-रत्न-भण्डार को सौंपना पड़ा है।

दौलतपुर, रायबरेली
१ जून १९३३

महावीरप्रसाद द्विवेदी

पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

जीवन-परिचय

जीवनी—प० महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म रायबरेली के अन्तर्गत दौलतपुर नामक ग्राम में सं० १६२१ बैशाख शुक्ल ४ को हुआ था। निर्धनता एवं ग्राम-जीवन के जिस वातावरण में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ हुई, वह सर्वथा निराशा-जनक था। गाँव के मदरसे में उर्दू-हिन्दी पढ़ते समय ही घर पर अपने पितृव्य पण्डित दुर्गाप्रसादजी के प्रबन्ध से इन्होंने थोड़ा-सा संस्कृत-व्याकरण पढ़ा एवं शीघ्रबोध तथा मूहूर्त-चिन्तामणि आदि पुस्तकें भी कण्ठ की। ग्राम्य-पाठशाला की पढ़ाई समाप्त करने के बाद इन्होंने नित्य प्रति १५ कोस रायबरेली जाकर, फीस आदि की कठिनाइयो के बीच अंगरेजी शिक्षा प्राप्त की, उसे पढ़ कर हठात् नेत्रो के समक्ष स्वनामधन्य पं० ईश्वरचन्द विद्यासागर का विद्यार्थी जीवन याद आ जाता है। अस्तु, कठिनाइयो की अधिकता के कारण वह स्कूल छोड़ कर आपको उन्नाव के पुरवा के कस्बे के एँग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल में आना पड़ा। दुर्भाग्यवश वह स्कूल कुछ ही समय में टूट गया और द्विवेदीजी को वहाँ से जाना पडा।

क्रमशः फतेहपुर और उन्नाव मे शिक्षा प्राप्त करके ये अपने पिता पं० रामसहायजी के पास बम्बई चले गये। यहाँ आपने मराठी, गुजराती, संस्कृत एवं अंग्रेजी का अच्छा अध्ययन किया। विद्याध्ययन के साथ ही साथ आप तार का काम भी सीखते थे। कुछ ही समय में इन्हे जी० आई० पी० रेलवे में सिगनेलर की जगह मिल गयी और क्रम-क्रम से उन्नति करते-करते आप झाँसी में डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिंएटेएडेएट के हेड

क्लर्क हो गये। यहाँ बंगालियों के सहवास ने इन्हे बंगला भाषा के अभ्यास में सहायता पहुँचायी। इसी समय आपने संस्कृत के काव्य-ग्रंथों तथा अलङ्कार-ग्रन्थों का विशेष रूप से मनन किया। धीरे धीरे आपका विचार साहित्य-सेवा की ओर आकृष्ट हुआ। इसी समय एक घटना ऐसी हो गयी, जिससे यह विचार कार्य-रूप में परिणत हो गया। पुराने डी० टा० एम० के स्थान पर जो साहब आये थे उनमे इनकी कुछ कहा सुनी हो गयी जिसके परिणाम-स्वरूप इन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया और स्वतन्त्र होकर हिन्दी की सेवा मे जुट गये। तब से बराबर द्विवेदीजी मातृभाषा का उपकार ही करते रहे।

परिस्थितियां—द्विवेजी के साहित्य-क्षेत्र में आने के समय हिन्दी की दशा बहुत ही अस्थिर थी। कविता के क्षेत्र मे जो नयी जान भारतेन्दुजी ने डाली थी उससे यद्यपि बहुत उपकार हुआ था और कविता धीरे-धीरे जीवन के समीप आती जाती थी किन्तु उसकी भाषा ब्रजभाषा ही थी जिससे आगे चल कर बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। गद्य की भाषा खड़ी और कविता की भाषा ब्रजभाषा होने से खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा का द्वन्द सामने आया और हिन्दी के कवि दो समाजो मे बँट गये, जो एक दूसरे का प्रबल विरोध करते थे। द्विवेदीजी के समय मे यही द्वन्द्व प्रबल रूप धारण किये हुए था। गद्य की दशा और भी बुरी थी। भारतेन्दु के समय से गद्य की प्रणाली निश्चित रूप से विकसित होने लगी थी। गद्य के प्रत्येक क्षेत्र निबन्ध, उपन्यास, नाटक आदि की ओर ध्यान दिया जा रहा था, बंगला तथा अंग्रेजी आदि के ग्रन्थों के अनुवाद से भाषा का भण्डार भरा जा रहा था पर अनुवादकर्ता तथा भारतेन्दु के अनन्तर आने वाले अधिकांश साहित्य-सेवियो का हिन्दी से अधिक परिचय न होने से, भाषा मे शिथिलता, व्याकरण दोष तथा अंग्रेजी और बँगलापन की बू

आने लगी। परिणामस्वरूप हिन्दी का रूप ही बिगड़ जाने की आशंका होने लगी। प्रवाह की तीव्रता के कारण सारे बन्धन टूट गये। ऐसी स्थिति मे द्विवेदीजी हिन्दी-क्षेत्र मे आये अपनी प्रतिभा के बल से उन्होने पद्य तथा गद्य दोनो पर अपना शुभ प्रभाव डाला।

कविता—जैसा पहले कहा गया है, द्विवेदीजी के समय में ब्रज और खड़ी बोली का प्रश्न तीव्र रूप मे था। यद्यपि पं० श्रीधर पाठक और पं० नाथूरामजी शर्मा 'शङ्कर' ने खड़ी बोली को अपनाकर उसे माँजने का प्रयत्न किया, पर इस ओर सबसे अधिक प्रभाव द्विवेदीजी ही का पड़ा। "सरस्वती" मे तो अपनी कविताएं आप छापते ही थे पर साथ ही 'कविता-कलाप' 'काव्य-मंजूषा' तथा 'सुमन' आदि कविता संग्रह एवं 'कुमारसम्भवसार' आदि अन्य ग्रन्थ भी आपने प्रकाशित कराये। यद्यपि जैसा द्विवेदीजीने 'रसज्ञ-रंजन' में कहा है, वे अपने को कवि नहीं मानते थे, पर इसमें सन्देह नहीं कि खड़ी बोली का रंग गाढ़ा करके तथा कविता में सामयिकता तथा उपयोगिता का समावेश करके आपने कविता को एक नए और निश्चित मार्ग पर डाला, जिससे प्रभावित होकर खड़ी बोली के अनेकानेक कविवर मैदान में आये। बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामचरित उपाध्याय, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय तो इनके उत्साहित शिष्यों मे हैं ही, पर साथ ही 'सनेही', ठाकुर गोपालशरणसिंह, बाबू सियारामशरण गुप्त, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि पर भी द्विवेदीजी का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव विद्यमान है। स्वयं एक बड़े कवि न होते हुए भी आप एक बहुत बड़े कवि-निर्माता अवश्य थे।

गद्य—कविता से भी अधिक द्विवेदीजी का प्रभाव हिन्दी गद्य के ऊपर पड़ा है। इस क्षेत्र मे सब से बड़ा काम गद्य के स्वरूप की रक्षा करना था। जो व्याकरण दोष, लचरपन तथा विदेशी वाक्य-विन्यास की बू गद्य मे स्थान पा रही थी उसका नियन्त्रण करना आपका प्रथम कार्य था। "इच्छा किया" आदि प्रयोगों

को लेकर आपने 'सरस्वती' में जो तीव्र आलोचना की उससे लेखकों के होश ठिकाने आने लगे, इस तीव्र कषाघात से लोगों की आँखे खुलीं और उन्हें ज्ञात हुआ कि हिन्दी भी एक ऐसी भाषा है, जिसमे व्याकरण के नियम हैं, वाक्य-विन्यास की शैली है और शब्दो का साधु प्रयोग। क्रमशः हिन्दी-गद्य एक निश्चित तथा शुद्ध शैली पर आ गया। पं० रामचन्द्रजी शुक्ल का मत था कि द्विवेदीजी का यह कार्य, जब तक भाषा के लिए व्याकरण विशुद्धता आवश्यक समझी जाती है, सदा साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा।

गद्य के स्वरूप-निर्धारण के अतिरिक्त द्विवेदीजी ने उसके विविध अङ्गो की पूर्ति का भी उद्योग किया। सामयिक विषयों पर लिखे हुए निबन्धो के अतिरिक्त आपने "बेक़न-विचार-रत्नावली" नामक निबन्धों का संग्रह तथा 'स्वाधीनता', 'शिक्षा' 'सम्पत्ति-शास्त्र' अदि कई अन्य ग्रन्थ वेकन, मिल, स्पेंसर आदि विद्वानों के ग्रन्थो के अनुवाद-स्वरूप प्रस्तुत किये। समालोचना के क्षेत्र में भी आपने कई पुस्तक तथा लेख प्रकाशित किये। उनके कविता-सम्बन्धी कई निबन्ध "रसज्ञ-रञ्जन" मे विद्यमान है। इनके अतिरिक्त 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' 'कालिदास की निरंकुशता', 'नैषधचरित चर्चा' आदि कई अन्य ग्रन्थ इसी विषय पर और हैं।

इस प्रकार हिन्दी पर द्विवेदीजी का प्रभाव सर्वतोमुखी तथा चिरकाल तक रहने वाला है।

द्विवेदीजी की शैली—लेखक को कैसी भाषा प्रयुक्त करनी चाहिए, इसके ऊपर द्विवेदीजी ने 'हिन्दी कालिदास की आलोचना' तथा 'रसज्ञ-रञ्जन' में अपने विचार प्रकट किये हैं। 'रसज्ञ-रञ्जन' मे उन्होने कहा है कि "ऐसी भाषा लिखनी चाहिए, जिसे सब सहज मे समझ लें········यदि इस उद्देश्य ही

की सफलता न हुई तो लिखना ही व्यर्थ हुआ।" एक अन्य स्थल पर कहा है कि "बेमुहाविरा भाषा अच्छी नहीं लगती। 'क्रोध क्षमा कीजिये' इत्यादि वाक्य कानको अतिशय पीड़ा पहुँचाते हैं।" इन बातो से द्विवेदीजी की भाषा तथा शैली का अनुमान किया जा सकता है। उन्होने घोर तत्समता का प्रयोग नहीं किया। 'शुद्धतर' और 'शुद्धतम' की अपेक्षा वे 'अधिक' का प्रयोग अच्छा समझते है। उर्दू तथा फारसी के प्रचलित शब्द द्विवेदीजी द्वारा बराबर प्रयुक्त हुए हैं। सब कुछ होते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिये कि अपने ही सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करना कठिन हो जाता है और द्विवेदीजी भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। यही कारण है कि बीच-बीच में आपका संस्कृत का पाण्डित्य अपना चमत्कार दिखा ही जाता है और 'सौरस्य' 'कौटिल्य' 'पुरुषायित सम्बन्ध' आदि शब्द स्थान-स्थान पर आते है। उग्र समालोचक के नाते समझिये अथवा और किसी भी कारण से हो—द्विवेदीजी की शैली में प्रवाह की कमी है। एक ही भाव को बार-बार दुहराने की प्रवृत्ति भी आपकी शैली की विशेषता है, 'रसज्ञ-रञ्जन' में भी इन प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है।

'रसज्ञ-रञ्जन' आपके साहित्यक निबन्धों का सर्वोत्तम संग्रह है। इसमें वर्णित 'ऊर्म्मिला-विषयक कवियों की उदासीनता' पढ़ कर ही शायद कविवर मैथलीशरणजी को 'साकेत' की सृष्टि करनी पड़ी थी। 'हंस का नीर-क्षीर-विवेक' शीर्षक लेख भी अपने ढँग का एक-ही है। 'नल का दुस्तर दूत कार्य' और 'हंस-सन्देश' में एक ओर जहाँ आलङ्कारिक वर्णन की विशेषता है, वहाँ दूसरी ओर भावों की ऊहापोह और उच्चकोटि के शृङ्गार रस का समुचित स्वाद मिलता है। कवि और कविता के विषय में आपने जो कुछ लिखा है. वह यद्यपि बीस वर्ष पुराना लिखा हुआ है; परन्तु आज भी उसकी अधिकांश बाते सत्य और नये कवियों के लिए माननीय हैं।

१-कवि-कर्त्तव्य।

[१]
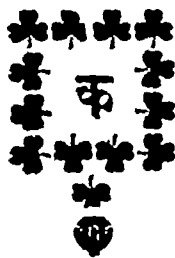
कवि-कर्त्तव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी के कवियों के कर्त्तव्य से है। समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातो का विचार करके हम यह लिखना चाहते हैं कि कवि का कर्त्तव्य क्या है। अपने मनोगत विचारो को हमें थोड़े ही में लिखना है अतः इस लेख को हम चार ही भागो में विभक्त करेंगे; अर्थात्—छन्द, भाषा, अर्थ और विषय। इन्हीं की यथाक्रम हम समीक्षा आरम्भ करते हैं।

छन्द

गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। यह समझना अज्ञानता की पराकाष्ठा है कि जो कुछ छन्दोबद्ध है सभी काव्य है। कविता का लक्षण जहाँ कहीं पाया जाय चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में, वही काव्य है। लक्षण-हीन होने से कोई भी छन्दोबद्ध लेख काव्य नहीं कहलाये जा सकते और लक्षण-युक्त होने से सभी गद्य-बन्ध काव्य-कक्षा में सन्निविष्ट किये जा सकते हैं। गद्य के विषय में कोई विशेष नियम निर्दिष्ट

करने की उतनी आवश्यकता नही जितनी पद्य के विषय में है। इसलिये हम, यहाँ पर, पद्य ही का विचार करेंगे। भाषा, अर्थ और विषय के सम्बन्ध में जो कुछ हम कहेंगे वह गद्य के सम्बन्ध में भी, प्रायः समान-भाव से प्रयुक्त हो सकेगा।

जिन पंक्तियों में वर्णों या मात्राओं की संख्या नियमित होती है, वे छन्द कहाती हैं; और छन्द मे जो कुछ कहा जाता है वह पद्य कहलाता है। कोई-कोई छन्द और पद्य दोनो को एक ही अर्थ का वाचक मानते हैं।

जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करे उनका पद्य अच्छा ही होता है, परन्तु सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्द-योजना करनी चाहिए। जैसे समय-विशेष में राग विशेष के गाये जाने से चित्त अधिक चमत्कृत होना है वैसे ही वर्णन के अनुकूल वृत्त-प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है। गले में डाली हुई मेखला के समान वृत्ति-रूपिणी हार लता को अनुचित स्थान में विनिवेशित करने से कवि की अज्ञानता दर्शित होती है। इस लेख में हम इस बात का विवेचन नहीं करना चाहते कि किस विषय के लिए कौन-सा छन्द प्रयोग में लाना चाहिए। काव्य के मर्मज्ञ निपुण कवि स्वयमेव जान सकते हैं कि कौन छन्द कहाँ विशेष शोभा-वर्धक होगा। प्राचीन संस्कृत कवि इसको पूरा-पूरा विचार रखते थे। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्रायः उपजाति-छन्द में किया है, नीति का वंशस्थ में किया है, चन्द्रोदयादि का रथोद्धता में किया है, वर्षा और प्रवास का मन्दाक्रान्ता में किया है और स्तुति, यश, शौर्य आदि का शार्दूल-विक्रीड़ित और शिखरिणी में किया है। यही नही, किन्तु वृत्त-रचना मे छन्द-शास्त्र के नियमों के अतिरिक्त वे लोग और-और विषयो का भी ध्यान रखते थे। दोधक-वृत्त का

लक्षण तीन भगण और दो गुरु है। इस नियम का प्रतिपालन करते हुए वे तीन ही तीन अक्षर वाले शब्द प्रयोग करते थे, जिस से छन्द की शोभा विशेष बढ़ जाती थी। तोटक में वे रूखे अक्षरवाले ही शब्द रखते थे; क्योंकि ऐसे अक्षर वाले शब्दों से सङ्गठित हुआ तोटक, ताल की द्रुतगति के समान, मन को सविशेष आनन्दित करता है। हिन्दी के कवियो को भी इन बातों का विचार जरूर करना चाहिए।

दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिये कि यदि वे लिख सकते हैं, तो इनके अतिरिक्त और-और छन्द भी लिखा करे। हम यह नहीं कहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिये जायँ। हमारा अभिप्राय यह है कि इनके साथ-साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किये गये वृत्तो मे से दो चार उत्तमोत्तम वृत्तो का भी प्रचार हिन्दी मे किया जाय। इन वृत्तों में से द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार हिन्दी में होने से हिन्दी काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी। किसी-किसी ने इन वृत्तो का प्रयोग आरम्भ भी कर दिया है। यह सूचना उन्ही लोगो के लिए है जो सब प्रकार के छन्द लिखने मे समर्थ हैं, जो घनाक्षरी और दोहे अथवा चौपाई की सीमा उल्लङ्घन करने मे असमर्थ हैं, उनके लिए नहीं।

आजकल के बोलचाल की हिन्दी की कविता उर्दू के विशेष प्रकार के छन्दो मे अधिक खुलती है, अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिए।

कुछ-कुछ कवियो को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है; उसे ही वे अच्छा लिख सकते है। उनको दूसरे प्रकार के छन्द लिखने का प्रयत्न भी न करना चाहिए। यदि कविता सरस और मनोहारिणी है, तो चाहे वह एक ही अथवा बुरे से बुरे छन्द

में क्यों न हो, उससे आनन्द अवश्य ही मिलता है। तुलसीदास ने चौपाई और बिहारीलाल ने दोहा लिख कर ही इतनी कीर्ति सम्पादन की है। प्राचीन कवियो को भी किसी-किसी वृत्त से समधिक स्नेह था, वे अपने आहत वृत्त ही को अधिक काम मे लाते थे और उसमें उनकी कविता खुलती भी अधिक थी। भारवि का वंशस्थ, रत्नाकर की वसन्ततिलका भवभूति और जगन्नाथ की शिखरिणी, कालिदास की मन्दाक्रान्ता और राजशेखर का शार्दूल-विक्रीड़ित इस विषय मे प्रमाण है।

पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिये। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंग्रेजी और बङ्गला मे विद्यमान हैं तब, कोई कारण नहीं, कि हमारी भाषा मे वे न लिखे जायँ। संस्कृत ही हिन्दी की माता है। संस्कृत का सारा कविता-साहित्य इस तुकबन्दी के बखेड़े से बहिर्गत-सा है। अत-एव इस विषय में यदि हम सस्कृत का अनुकरण करे, तो सफ-लता की पूरी-पूरी आशा है। अनुप्रास-युक्त पदान्त सुनते-सुनते हमारे कान उस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गये हैं। इसलिए अनुप्रास-हीन रचना अच्छी नहीं लगती। बिना तुक वाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगेगी इसमे कोई सन्देह नहीं। अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नही, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय, या उससे कोई अपरिमेय हानि पहुँचे। कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अनुप्रासों के ढूँढ़ने का प्रयास उठाने में समुचित शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है, इससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासो का विचार न करने से कविता लिखने में सुगमता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं

पड़ती। अतएव पदान्त में अनुप्रास-हीन छन्द; हिन्दी में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में प्रयोग किये गये शिखरिणी, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं, जिनमें अनुप्रास का न होना काव्य-रसिकों को बहुत ही कम खटकेगा। पहले-पहल इन्हीं वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए।

किसी भी प्रचलित परिपाटी का क्रम-भङ्ग होता देख प्राचीनता के पक्षपाती बिगड़ खड़े होते हैं और नई चाल के विषय में नाना प्रकार की कुचेष्टाएँ और दोषोद्भावनाएँ करने लगते हैं, यह स्वाभाविक बात है। परन्तु यदि इस प्रकार की टीकाओं से लोग डरते, तो संसार से नवीनता का लोप ही हो जाता। हमारा यह मतलब नहीं कि पदान्त में अनुप्रास वाले छन्द लिखे ही न जाया करें। हमारा कथन इतना ही है कि इस प्रकार के छन्दों के साथ अनुप्रास-हीन छन्द भी लिखे जायँ, बस!

भाषा

कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज मे समझ ले और अर्थ को हृदयङ्गम कर सके। पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है और पढ़ने में जी लगता है। परन्तु जिस काव्य का भावार्थ कठिनता से समझ में आता है, उसके आकलन में जी नहीं लगता और बराबर अर्थ का विचार करते-करते उससे विरक्ति हो जाती है। जो कुछ लिखा जाता है, वह इसी अभिप्राय से लिखा जाता है कि लेखक का हृद्गत भाव दूसरे समझ जायँ। यदि इस उद्देश्य ही की सफलता न हुई, तो लिखना ही व्यर्थ हुआ। अतएव क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना ही सब प्रकार वांछनीय है। कालिदास, भवभूति और तुलसीदास के काव्य सरलता के आकार हैं; परम विद्वान् होकर भी उन्होंने सरलता ही को विशेष मान दिया है। इसीलिए उनके काव्यों का इतना आदर है। जो

काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है, वह बहुत कम लोकमान्य होता है। कवियों को इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है। कोई-कोई कवि व्याकरण के नियमों की ओर दृक्पात तक नहीं करते। यह बड़े खेद और लज्जा की बात है। ब्रजभाषा की कविता में कविजन मनमानी निरंकुशता दिखलाते हैं। यह उचित नहीं। जहां तक सम्भव हो शब्दों के मूल-रूप न बिगाड़ना चाहिये।

मुहाविरे का भी विचार रखना चाहिए। बे-मुहाविरा-भाषा अच्छी नहीं लगती। "क्रोध क्षमा कीजिए" इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुँचाते हैं। मुहाविरा ही भाषा का प्राण है; उसे जिसने नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।

विषय के अनुकूल शब्द-स्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी साव-धानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है। रसायन सिद्ध करने में आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है, वैसे ही यथोचित शब्दों का उपयोग न करने से काव्य रूपी रस भी बिगड़ जाता है। किसी-किसी स्थल-विशेष पर रूक्षा-क्षर वाले शब्द अच्छे लगते हैं, परन्तु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों ही का प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने में अक्षर मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए। अच्छे अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई-कोई पद्य केवल अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अन्तःकरण को द्रवीभूत कर देता है। "टुटत अङ्ग बैठे तरु जाई" इत्यादि वाक्य लिखना हिन्दी की कविता को कलङ्कित करना है।

शब्दो को यथा-स्थान रखना चाहिए। शब्द-स्थापना ठीक न होने से कविता की जो दुर्दशा होती है और अर्थांश मे जो क्लिष्टता आ जाती है, उसके उदाहरण "हिन्दी-कालिदास की समालोचना" मे दिये जा चुके हैं।

गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिए। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसके गद्य मे एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य-समाज की जो भाषा हो उसी भाषा मे गद्य पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए। गद्य का प्रचार हिन्दी मे थोड़े दिनों से हुआ है। पहले गद्य प्रायः न था; हमारा साहित्य केवल पद्यमय था। गद्य साहित्य की उत्पत्ति के पहले पद्य में ब्रजभाषा ही का सार्वदेशिक प्रयोग होता था अब कुछ अन्तर होने लगा है। गद्य की इस समय, उन्नति हो रही है। अतएव अब यह सम्भव नहीं कि गद्य की भाषा का प्रभाव पद्य पर न पड़े। जो प्रबल होता है वह निर्बल को अवश्य अपने वशीभूत कर लेता है। यह बात भाषा के सम्बन्ध मे भी तद्वत् पाई जाती है। पचास वर्ष पहले के कवियो की भाषा इस समय के कवियों की भाषा से मिला कर देखिए। देखने से तत्काल विदित हो जायगा कि आधुनिक कवियों पर बोल-चाल की हिन्दी-भाषा ने अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है; उनकी लिखी ब्रजभाषा की कविता में बोल-चाल (खड़ी बोली) के जितने शब्द और मुहाविरे मिलेंगे उतने ५० वर्ष पहले के कवियों की कविता में कदापि न मिलेंगे। यह निश्चित है कि किसी समय बोल-चाल की हिन्दी भाषा, ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम-क्रम से गद्य की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा, प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है। जो लोग हिन्दी बोलते हैं और हिन्दी ही के

गद्य साहित्य की सेवा करते हैं, उनके पद्य में ब्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिनों तक नहीं रह सकता।

अर्थ

अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। जिस पद्य मे अर्थ का चमत्कार नहीं, वह कविता ही नहीं। कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए। ऐसा न होने से अर्थ सौरस्य नहीं आ सकता। विलाप-वर्णन करने में कवि के मनमे यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयं विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयं अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तःकरण में यह दृढ़ संस्कार होना चाहिए कि वर्ण्यमान नदी, पर्वत अथवा वन के सम्मुख वह स्वयं उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। जब कवि की आत्मा का वर्ण्य-विषयों से इस प्रकार निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता पढ़ कर पढ़ने वालों के हृदय पर तद्वत भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। कविता करने में, हमारी समझ में अलङ्कारों को वलात् लाने का प्रयत्न न करना-चाहिए। विषय-वर्णन के झोके मे जो कुछ मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिए। वलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृति भाव से जो कुछ आ जाय उसे ही पद्य-बद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है। अपने मनोनीत अर्थ को इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए कि पद्य पढ़ते ही पढ़ने वाले उस तत्क्षण हृदयङ्गम कर सकें, क्लिष्ट कल्पना अथवा सोच-विचार करने की आवश्यकता न पड़े।

बहुत से शब्द ऐसे है जो सामान्य रीति से सब एक ही अर्थ के व्यञ्जक है, परन्तु विशेष ध्यानपूर्वक देखने अथवा धातु के

अर्थ का विचार करने से पृथक्-पृथक् शब्दों में पृथक्-पृथक् शक्तियो का गर्भित रहना प्रकट होता है। 'तन्वी' शब्द का सामान्य अर्थ स्थल विशेष में स्त्री होता है। परन्तु 'तनु' शब्द का अर्थ कृश होने के कारण 'तन्वी' का विशेष अर्थ दुर्बल है। यदि कहे कि "यह तन्वी अपने पति के साथ सुख से अपने घर मे रहती है" तो यहाँ 'तन्वी' शब्द उस अर्थ का व्यञ्जक नहीं हो सकता जो अर्थ रामा' इत्यादि शब्दों का होता है। परन्तु यदि कहे कि "तन्वी अपने प्रियतम का वियोग बड़े धैर्य्य से सहन कर रही है" तो यहाँ 'तन्वी' शब्द की गर्भित शक्ति से वियोग-द्योतक अर्थ को सहायता पहुँचती है। अतः ऐसे स्थल ५८ इस शब्द का प्र योग बहुत प्रशस्त है। अर्थ-सौरस्य के लिए जहाँ तक सम्भव हो, ऐसे ही ऐसे शक्तिमान् शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

घनाक्षरी और सवैया आदि लिखने वाले कुछ कवियों की कविता मे कभी-कभी अनेक निरर्थक शब्द आ जाते हैं। कभी-कभी शब्दो के ऐसे विकृत-रूप प्रयुक्त हो जाते हैं कि उनका अर्थ ही समझ मे नहीं आता। कभी-कभी पादान्त में समान अक्षर लाने ही के लिए निरर्थक अथवा अपभ्रंश शब्द लाये जाते हैं। ब्रजभाषा की कविता, अथवा घनाक्षरी या सवैया के हम प्रतिकूल नहीं, परन्तु हमारा मत यह है कि अर्थ के सौरस्य ही की ओर कवियो का ध्यान अधिक होना चाहिए, शब्दो के आडम्बर की ओर नहीं। अर्थ-हीन अथवा अनुपयोगी शब्द न लिखे जाने चाहिए और न शब्दों के प्रकृत रूप को बिगाड़ना ही चाहिए। शब्दो के बिगाड़ने से उनके बिगड़े हुए रूप पढ़ने वालो के कान को खटकते हैं और जिस अर्थ मे वे प्रयुक्त होते हैं, उस अर्थ की वे कभी-कभी पोषकता भी नहीं करते।

अश्लीलता और ग्राम्यता-गर्भित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिए और न देश, काल तथा लोक आदि के विरुद्ध कोई बात कहनी चाहिए। कविता को सरस बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। नीरस पद्यों का कभी आदर नहीं होता। जिसे पढ़ते ही पढ़ने वाले के मुख से 'वाह' न निकले, अथवा उनका मस्तक न हिलने लगे, अथवा उसकी दन्त-पक्ति न दिखलाई देने लगे, अथवा जिस रस की कविता है, उस रस के अनुकूल वह व्यापार न करने लगे, तो वह कविता कविता ही नहीं, वह तुकबन्दी मात्र है। कविता के सरस होने ही से ये उपर्युक्त बातें हो सकती हैं, अन्यथा नहीं। रस ही कविता का सब से बड़ा गुण है। श्रीकण्ठ-चरित के कर्ता ने ठीक कहा है—

तैस्तैरलङ्कृतिशतैरवतंसितोऽपि
रूढो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि।
नून विना घनरसप्रसराभिषेकं
काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः॥

अर्थात् सैकड़ों अलङ्कारों से अलंकृत हो कर भी, शब्द-शास्त्र के उच्चासन पर अधिरूढ़ हो कर भी और सब प्रकार सौष्ठव को धारण करके भी रस-रूपी अभिषेक के बिना, कोई भी प्रबन्ध काव्याधिराज पदवी को नहीं पहुँचता।

विषय

कविता का विषय मनोरञ्जक और उपदेश-जनक होना चाहिए। यमुना किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के "गतागत" की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्य्यन्त पशु; भिक्षुक से लेकर राजा पर्य्यन्त मनुष्य; बिन्दु से लेकर समुद्र पर्य्यन्त जल; अनन्त

आकाश; अनन्त पृथ्वी; अनन्त पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है; सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरञ्जन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़ कर कोई-कोई कवि स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कविता की चरम सीमा समझते हैं? केवल अविचार और अन्ध-परम्परा! यदि "मेघनाद-वध" अथवा "यशवन्तराव महाकाव्य" वे नहीं लिख सकते, तो उनको ईश्वर की निःसीम सृष्टि में छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुन कर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविताएँ करनी चाहिए। अभ्यास करते-करते शायद, कभी, किसी समय, वे इससे अधिक योग्यता दिखलाने में समर्थ हों और दण्डी कवि के कथनानुसार* शायद कभी वाग्देवी उन पर सचमुच ही प्रसन्न हो जाय। नायिका के हाव-भावादिक के वर्णन का अभ्यास करने वालों पर भी सरस्वती की कृपा हो सकती है; परन्तु तदर्थ उसकी उपासना न करना ही अच्छा है।

संस्कृत में सहस्रशः उत्तमोत्तम काव्य विद्यमान हैं। अतः उस भाषा में काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक, कुवलयानन्द, रसतरंगिणी आदि साहित्य के अनेक लक्षण-ग्रन्थों का होना अनुचित नहीं। परन्तु हिन्दी-भाषा में सत्काव्य का प्रायः अभाव है। इस कारण अलंकार और रस-विवेचन के झगड़ों से जटिल ग्रन्थों के बनने की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'हेला' हाव का

---

*न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥
—काव्यादर्श

अर्थात्—पूर्व वासना और अद्भुत प्रतिभा न होने पर भी शास्त्र के अनुशीलन और यत्न के अभिनिवेश द्वारा उपासना की गयी सरस्वती अनुग्रह अवश्य ही करती है।

लक्षण और उसका चित्र देखने से लाभ ? अथवा दीपक अलङ्कार के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को जानने का क्या उपयोग ? हिन्दी में ऐसे कितने काव्य हैं जिनमें से सब भेद पाये जाते हैं ? हमारी अल्प-बुद्धि के अनुसार रस कुसुमाकर और जसवन्तजसो (!) भूषण के समान ग्रन्थों की, इस समय, आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि किसी आदर्श पुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी-साहित्य को अलभ्य लाभ होता। कनिष्ठा और ज्येष्ठा का भेद और उनके चित्र देखे तो क्या और न देखे तो क्या ? और उत्प्रेक्षा अलङ्कार का लक्षण नामानुसार सिद्ध हो गया तो क्या और न सिद्ध हुआ तो क्या ? नायिकाओं के भी झगड़ने में उलझने से हानि के अतिरिक्त लाभ की कोई सम्भावना नहीं। हिन्दी काव्य की हीन दशा को देख कर कवियों को चाहिए कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए। अलङ्कार, रस और नायिका-निरूपण बहुत हो चुका।

इस समय, कवियों का एक दल कवि-समाजों और कवि-मण्डलों में बद्ध होकर समस्या पूर्ति करने में व्यग्र हो रहा है। इन पूर्तिकारों में से कुछ को छोड़ कर शेष, कविता के नाम की बड़ी ही अवहेलना कर रहे हैं। इनको चाहिए कि बिना योग्यता सम्पादन किये समस्या-पूर्ति करने के झगड़े में न पड़ें। अच्छी समस्या पूर्ति करना असाधारण प्रतिभावान का काम है। एक साधारण कवि अपने मनोऽनुकूल विषय पर एक ही घड़ी में चाहे ५० पद्य लिख डाले और वे सब चाहे अच्छे भी हों, परन्तु किसी समस्या के टुकड़े पर अच्छी कविता करने में वह शायद ही सफल-मनोरथ होगा। समस्या पूर्ति के लिए अपार ग कौशल

और प्रबल प्रतिभा की आवश्यकता है। इस समय प्रतिभा का पूरा पूरा विकास बहुत कम देखा जाता है। इसलिए समस्याओं की पूर्तियाँ भी प्राय अच्छी नही होती। हमारी यह सम्मति है कि समस्या पूर्ति के विषय को छोड कर, अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार विषयो को चुन कर, कवि को यदि बड़ी न हो सके, तो छोटी ही छोटी स्वतन्त्र कविता करनी चाहिए, क्योकि इस प्रकार की कविताओ का हिन्दी मे प्राय. अभाव है।

संस्कृत और अगरेजी काव्यो का अनुवाद हिन्दी मे करने की ओर भी कवियो की रुचि बढ़ने लगी है। परन्तु स्वतन्त्र कविता करने की अपेक्षा दूसरे की कविता का अनुवाद अन्य भाषा मे करना बड़ा कठिन काम है। एक शीशी मे भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी मे डालने लगते है तब डालने ही मे पहले कठिनता उपस्थित होती है; और यदि बिना दो चार बूँद इधर-उधर टपके यह दूसरी शीशी में चला भी गया, तो इस उलट-फेर मे उसके सुवास का विशेषांश अवश्य उड़ जाता है। एक भाषा की कविता का दूसरी भाषा मे अनुवाद करने वालो को यह बात स्मरण रखनी चाहिए। बुरा अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है. क्योकि अनुवाद के द्वारा उनके गुणो का ठीक-ठीक परिचय न होने के कारण पढ़ने वालो की दृष्टि मे वह हीन हो जाता है। इसलिए किसी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करने के पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने मे समर्थ हो सकता है; दूसरा नहीं। परन्तु अच्छा कवि होना भी दुर्लभ है। महाकवि मङ्खक ने ठीक कहा है—

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसङ्घेन च ये न पूर्णाः।
ते रातिमात्रेण दरिद्र कल्पा यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

अर्थात्—अर्थ-रत्न और स्वर्ण-समूह से जो परिपूर्ण नहीं है,

वे महादरिद्री लोग केवल रीति-मात्र का अवलम्बन कर के कवीश्वर की पदवी कदापि नही पा सकते।

काव्य के गुणों और दोषो की विवेचना संस्कृत की जिन पुस्तको में है, उनमे कवियो के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य पर बहुत कुछ कहा गया है। परन्तु उन सब बातों का विचार हम यहाँ पर नहीं कर सकते। केवल स्थूल-स्थूल बातो ही के विचार की इच्छा से हमने यह लेख आरम्भ किया था। अतएव, अब हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

[२]

ससार मे ईश्वर या देवताओ का अवतार कई प्रकार का और कई कामो के लिए होता है। अलौकिक कार्य करने वाले प्रतिभाशाली मनुष्य हो अवतार हैं। स्वाभाविक कवि भी एक प्रकार के अवतार है। इस पर कदाचित कोई प्रश्न करे कि अकेले कवि ही क्यो अवतार माने गये, और लेखक इस पद पर क्यो न बिठाये गये ? तो यह कहा जा सकता है कि लेखक का समावेश कवि मे है, पर कवियो में कुछ ऐसी विशेष शक्ति होती है, जिसके कारण उनका प्रभाव लोगो पर बहुत पडता है। अब मुख्य प्रश्न यह है कि कवि का अवतारहोता ही क्यो है ? पहुंचे हुये पण्डितो का कथन है कि कवि भी "धर्म्म-संस्थापनार्थाय" उत्पन्न होते हैं। उनका काम केवल तुक मिलाना या "पावस-पचासा" लिखना ही नहीं। तुलसीदास ने कवि होकर वैष्णव-धर्म की स्थापना की है, मत-मतान्तरो का भेद मिटाया है और "ज्ञान के पन्थ को कृपाण की धार" बताया है। प्रायः उसी प्रकार का काम, दूसरे रूप मे, सूरदास, कबीर और लल्लूलाल ने किया है। हरिश्चन्द्र ने शूरता, स्वदेश-भक्ति और सत्य प्रेम का धर्म चलाया है। जिन कवियो ने केवल संस्कृत भाषा ही का भण्डार भरा है वे भी, किसी न किसी रूप मे, लोगो के उपदेशक थे।

हिन्दी के जितने कवि प्रसिद्ध हैं उन्होंने देश, काल, अवस्था और पात्र के अनुसार ही कविता की है। दूसरे देशों और दूसरी भाषाओं के कवियों का नाम लेने की यहां आवश्यकता नहीं; क्योंकि हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों ने, समय-समय पर, अपने कर्त्तव्य को समझा है और उसका पालन भी किया है। राजा शिवप्रसाद-सदृश इतिहासकारों ने भी अवतार का काम किया है, यद्यपि उनके विचारों को लोग मानते नहीं। सारांश यह कि कवियों को ऐसा काम करना पड़ता है—वे स्वभाव ही से ऐसा करते हैं कि—संसार का कल्याण हो और इस प्रकार उनका नाम आप ही आप अमर हो जाय। भूषण के समान कवियों ने तो राजनीतिक आन्दोलन तक उपस्थित कर दिया है। "पूर्ण" कवि ने हमें यह उपदेश दिया है कि जो लोग बोलचाल की भाषा से किसी प्रकार अप्रसन्न हैं वे भी अपनी पुरानी व्रज (कविता) की बोली को बिना तोड़े-मरोड़े काम में ला सकते हैं, और यदि वे चाहें तो बोलचाल की भाषा में भी कविता कर सकते हैं। सारांश यह कि कविता लिखते समय कवि के सामने एक ऊंचा उद्देश्य अवश्य रहना चाहिये। केवल कविता ही के लिये कविता करना एक तमाशा है। हिन्दी में कविता-सम्बन्धी इस प्रकार के लेख पढ़कर बाहर के लोग यह अनुमान कर सकते हैं कि कदाचित् हिन्दी के कवि अपना कर्त्तव्य नहीं जानते; नहीं तो उनके लिये ऐसा लेख न लिखा जाता। यदि कोई मराठी या बंगला के समाचार-पत्र या मासिक पत्र पढ़े, तो उसे उनमें ऐसे लेख न मिलेंगे। ऐसे लेख उन भाषाओं में कम से कम चालीस वर्ष पहिले निकल चुके हैं। और उन लेखों के अनुसार उन भाषाओं की कविता इतने समय में इतनी ऊंची हो गई है कि समालोचकों के लिये जन्म भर विचार करने की सामग्री तैयार है। भाषा या साहित्य की जब जैसी अवस्था होती है, तब उसमें उसी प्रकार के लेख निकलते

है। हम यहाँ पर इस विषय का एक उदाहरण देते है। एक बार "छत्तीसगढ़-मित्र" में हिन्दी व्याकरण के विषय में कुछ लेख निकले थे। उस पर एक महाराष्ट्र सज्जन ने बम्बई के सम्पादक से पूछा कि क्या हिन्दी में भी व्याकरण नही ? इस पर सुनने मे आया कि सम्पादक ने उनको यह उत्तर दिया कि और-और भाषाओंके समान हिन्दीमे कोई व्याकरण है। परन्तु इस विषय का निरूपण विदेशियोंने किया है। हिन्दुस्तानी लोग न उसे खोज सके है और न खोज हो जाने पर भी उसकी ओर ध्यान देते है।

कवि की कल्पना-शक्ति तीव्र होती है। इस कल्पना शक्ति के द्वारा वह कठिन बातो को ऐसे अनोखे ढङ्ग से सब के सामने रखता है कि वे सहज ही समझ मे आजाती है। इसी शक्ति से वह अनजाने हुये पदार्थों या दृश्यो का चित्र इतना मनोहर खीचता है कि पढ़ने या सुननेवाले एकाग्रचित्त हो जाते है और उस बात पर प्रेम पूर्वक विचार करते है। फिर कवि अपने अवलोकन और अपनी कल्पना से ऐसी शिक्षा देता है कि वह न तो आज्ञा का रूप धारण करती है, और न अपना स्वाभाविक रूखापन ही प्रकट करती है, किन्तु भीतर ही भीतर मन को उकसा देती है। ताजमहल का वर्णन करते समय कवि इस बात पर ध्यान न देगा कि यह किस सन् मे बना था, इसकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है, या इसका पत्थर कहाँ से आया है ? इमारत को देखकर उसका मन कदाचित् उसके मीनार से भी ऊँचा चढ़ जायगा और वह उस समय की कल्पना करने लगेगा जब बादशाहकी बेगम, मरते समय रौजे की वसीयत कर रही थी। उसके मन में पुराने और नये समय के मिलान का भी चित्र खिच जायगा और वह समय के फेर की घटनाओ को सोचने लगेगा। मनोहर वर्णन और शिक्षा के साथ-साथ कवि अपने शब्द और वाक्य भी ऐसे मनोहर बनाता है कि पढ़ने वाले के आनन्द की सीमा नहीं

रहती। कविता लिखते समय जो-जो भाव कविके हृदय मे उदित होते हैं, वही भाव पढ़ने वाले के हृदय में उत्पन्न हो सकते हैं। इसके लिये पढ़ने वाला सहृदय होना चाहिये, नहीं तो भैंस के आगे बीन बजने लगेगी। यदि स्वतः कवि मे सहृदयता न हो तो फिर उसका श्रम ही वृथा है। मनोविज्ञानी लोग कदाचित किसी समय हमको यह बता सकेंगे कि मनोविकार प्रकट करने के लिए छन्द ही का उपयोग क्यो होता है? गद्य मे कोई-कोई लेखक—विशेषकर उपन्यास लेखक—ऐसा मनोहर बर्णन करते है और ऐसे भाव प्रकट करते हैं कि उनका गद्य पद्य हो जाता है। जोहो अभी तो कवि लोग ही विशेषकर यह काम करते हैं और उसके लिए छन्द काम में लाते है।

आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था मे है। हिन्दी-कवि का कर्त्तव्य यह है कि वह लोगो की रुचि का विचार रख कर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगो में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाय। पढ़नेवालोके मनमे नई-नई उपमाओं को, नये-नये शब्दों को और नए-नए विचारों को समझने की योग्यता उत्पन्न करना कवि ही का कर्त्तव्य है। जब लोगो का झुकाव इस ओर होने लगे तब, समय-समय पर, कल्पित अथवा सत्य अख्यानो द्वारा सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विषयो की मनोहर शिक्षा दे। जब जो विषय उसके अवलोकन मे आवे, तभी उस पर अपनी स्वाभाविक शक्ति से कविता लिखकर लोगो को परोक्ष-रूप से सचेत करे। कविता के प्रभाव का एक छोटा-सा उदाहरण सुनिए। पद्माकर कवि के घराने के लोगो मे विवाह के समय कवित्त पढ़ने की चाल है। उनकी जाति के लोग कहते है कि यह चाल पद्माकर के समय से चली है और वह अब तक चली जाती है। क्या यह बात आज-

कल के कवियो मे नही हो सकती ? जान पडता है कि "अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करहि प्रकाश"—जिसने यह दोहा लिखा है उसको बडी दूर की सूझी है। बोल-चाल की भाषा में आज तक ऐसी कोई कविता नही* बनी, जिसका प्रचार "चन्द्र-कान्ता" के समान साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी हुआ हो। सदोष होने पर भी इस उपन्यास के कारण पुरुषो और स्त्रियो में उपन्यास पढने की रुचि उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार जब बोल-चाल की भाषा की कविता को, या आजकल के और दूसरे पद्यों को साधारण लोग भी पढ़ने लगे, तब समझना चाहिये कि कविता और कवि लोक-प्रिय हैं। आजकल की संस्कृत-भरी कविता का रचा जाना और भी अधिक हानिकारक है।

सारांश यह कि यदि आजकल की कवितामें शास्त्रोक्त गुणों को छोड़कर नीचे लिखे हुये गुण हो तो सम्भव है कि वह लोक-प्रिय होगी—

(१) कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोविकारो का वर्णन हो।

(२) उसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणो के उदाहरण रहे।

(३) कल्पना सूक्ष्म और उपमादिक अलङ्कार गूढ न हो।

(४) भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो।

(५) छन्द सीधा, परिचित, सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।

---

*यह आसन अब 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' को मिल गया है। १९१८।

२–कवि बनने के लिए सापेक्ष साधन

आजकल हिन्दी कवियों ने बड़ा जोर पकड़ा है। जिधर देखिए उधर कवि ही कवि। जहाँ देखिए वहाँ कविता ही कविता। कवि बनाने के कारखाने भी रात–दिन जारी हैं। कोई कहता है, हमारे पिङ्गल के प्रचार से गाँव-गाँव में कवि होसकते हैं। कोई कहता है, हमारा काव्य-कल्पद्रुम पढ़ लेने से सैकडों कालिदास पैदा होसकते हैं। कोई कहता है, हमारा काव्य-भास्कर ही कवि बनने के लिए एक मात्र साधन है, उसकी एक ही झाँकी मनुष्य को कवित्व की प्राप्ति करा सकती है। कोई कहता है, हमारी सभा की दी हुई समस्याओं की पूर्तियाँ करने से अनेक व्यास और वाल्मीकि फिर जन्म ले सकते हैं। शायद इन्हीं लोगों के उद्योग का फल है जो हिन्दी में आजकल इतने कवियों का एक ही साथ प्रादुर्भाव होगया है। पर, इन कविता कुबेरों के प्रादुर्भाव से सरस हृदय सज्जन बहुत तङ्ग होरहे हैं। जो काम बहुत कठिन समझा गया है, वह इन कवियों के लिए खेल होरहा है। कविता करना अन्य लोग चाहे जैसा सहज समझें, हमें तो यह एक तरह दु:साध्य ही जान पड़ता है। अज्ञता और अविवेक के कारण कुछ दिन हमने भी तुकबन्दी का अभ्यास किया था। पर कुछ समझ आते ही हमने अपने को इस काम का अनधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से जाना ही प्राय: बन्द कर दिया।

विक्रम के ग्यारहवे शतक में, काश्मीर मे, अनन्तदेव नामक एक राजा था। उसके शासन समय मे क्षेमेन्द्र नामक एक महा-कवि होगया है। वह बहुत, बहुश्रुत और बहुदर्शी विद्वान था। उसकी प्रतिभा बडी ही विलक्षण थी। उसकी बुद्धि इतनी व्यापक और सूक्ष्म थी कि प्रत्येक विषय उसके लिए हस्तामलकवत् था। उस , न मालूम, कितने ग्रथ बना डाले। उनमे से दस-बीस तो छप कर प्रकाशित भी होगये है। अपने शिष्यो की शिक्षा के लिए छोटे-छोटे ग्रन्थ तो हँसते-हँसते बना डालता था। जरा उसकी बुद्धि की व्यापकता तो देखिए। कभी तो आप वेदान्त पर ग्रन्थ लिखते थे, कभी कुट्टिनियो की लीला का उद्घाटन करने के लिए "समय-मातृका" निर्माण करते थे, कभी "दशा-वतार-चरित" लिखकर विष्णु भगवान की लीला का वर्णन करते थे, कभी बौद्ध धर्म के तत्वों से भरा हुआ महाकाव्य लिखते थे, कभी काव्य और छन्द शास्त्र पर ग्रथ रचना करते थे और कभी "कलाविलास" बनाने बैठ जाते थे। इसी से कहते हैं कि क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बडी प्रखर था। क्षेमेन्द्र का 'बोधि-सत्त्वावदान कल्पलता' नामक ग्रथ एक अपूर्व काव्य है। उसकी भाषा प्राञ्जल और भाव तथा कवित्व बहुत मनोहारी है। इस ग्रथ का एक तिब्बतीय अनुवाद, अभी कुछ ही समय हुआ, प्राप्त हुआ है। इसे बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी प्रकाशित कर रही है। श्रीयुत शरच्चन्द्रदास इसके सम्पादक है।

क्षेमेन्द्रकवि ने 'कवि-कण्ठाभरण' नामका एक छोटा सा ग्रथ लिखा है। उसमें आपने बताया कि किन साधनो से मनुष्य कवि होसकता है और किस तरह उसकी तुकबन्दी कविता कहलायी जाने योग्य होसकती है। क्षेमेन्द्र खुद भी महाकवि था। अतएव उसके बताये हुए साधन अवश्य ही बडे महत्व के होने चाहिए। यही समझकर हम अपने हिन्दीके कवियोके जानने

के लिए क्षेमेन्द्र के निर्दिष्ट साधनों को थोड़े में उल्लेख करते हैं।

कवि होनेके लिए पाँच बातें अपेक्षित है। वे पाँच बातें ये हैं- (१) कवित्व शक्ति (२) शिक्षा (३) चमत्कारोत्पादन (४) गुण-दोष-ज्ञान (५) परिचय-चारुता।

अब इन पाँचों का संक्षिप्त विवेचन सुनिए।

कवित्व-शक्ति

किसी-किसी मे कवित्व-शक्ति बीज-रूप से रहती है। उसे अंकुरित करना पड़ता है। जिसमे वह नही होती वह अच्छा कवि नही होसकता। कवित्व-शक्ति को जागृति करने के दो उपाय है—दिव्य और पौरुषेय।

सरस्वती देवी के क्रियामातृ-का—मन्त्र जप करना उसकी मूर्ति का ध्यान करना और उसके यन्त्र का पूजन करना इत्यादि दिव्य उपाय है।

पौरुषेय उपाय यह है कि किसी अच्छे कवि को गुरू बना कर उससे यथाविधि काव्य-शास्त्र का अध्ययन करना।

कवि बनने की इच्छा से काव्य-शास्त्र का अध्ययन करने वाले शिष्य तीन प्रकार के होते हैं—अल्प-प्रत्यय-साध्य, कृच्छ्र-साध्य और असाध्य।

थोड़े ही अध्ययन से जो सफल-मनोरथ होजायँ वे अल्प-प्रयत्न-साध्य, अध्ययन मे विशेप परिश्रम करने से जिन्हे इष्ट लाभ हो वे कृच्छ्र-साध्य, जो बरसो सिर पीटने पर भी कुछ न कर सकें वे असाध्य समझे जाते हैं।

अल्प-प्रयत्न-साध्य शिष्यो के कर्त्तव्य सुनिए।

ऐसे पुरुपो को चाहिए कि वे किसी अच्छे साहित्य ज्ञाता कवि से अध्ययन करे। जो केवल तार्किक या वैयाकरण हो उससे सदा दूर रहे। जो सरस-हृदय हो, स्वयं कवि हो, व्याक-

रण भी जानता हो, छन्दोग्रन्थों का भी पारगामी हो उसे गुरू बनाना चाहिए। अच्छे-अच्छे काव्यो को उसके मुख से सुनना चाहिए। गाथा, प्राकृत तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओ के पद्यों का भी सावधान श्रवण करना चाहिए। चमत्कार-पूर्ण उक्तियोंके विषय में चर्चा करनी चाहिए। प्रत्येक रस के आस्वादन में तन्मय होजाना चाहिए। जहाँ जिस गुण का प्रकर्ष हो वहाँ अभिनन्दन करके आनन्दित होना चाहिए। विवेक बुद्धि द्वारा भले बुरे काव्य को पहिचानने की चेष्टा करनी चाहिए। ऐसा करते-करते कुछ दिनों में कवित्व-शक्ति अंकुरित हो उठती है और उस शक्ति से सम्पन्न होने पर कविता करने की योग्यता आजाती है।

कृच्छ्र-साध्य जनो को चाहिए कि कालिदास आदि सत्कवियों के सारे प्रबन्धो को आद्यन्त पढ़ें और खूब विचार-पूर्वक पढ़ें। इतिहासो का भी अध्ययन करें। तार्किकों की उग्र-सन्धि से दूर ही रहे। कविता के मधुर सौरभ को उससे नष्ट होने से बचाते रहे। अभ्यास के लिए कोई नया पद्य लिखे तो महाकवियों की शैली को सदा ध्यान में रक्खें। पुराने कवियो के श्लोकों के पाद, पद और वाक्य आदि को निकाल कर उनकी जगह पर अपने बनाये पाद, पद और वाक्य रक्खे। अभ्यास बढाने के लिए वाक्यार्थ-शून्य पद्य बनावे। कभी-कभी अन्य कवियों की रचना मे फेर-फार करके, कुछ अपना कुछ उनका रखकर, नूतन अर्थ का समावेश करने की चेष्टा करें।

जो लोग किसी बडे रोग से पीड़ित हैं, व्याकरण और तर्कशास्त्रके सतताभ्यास से जिनकी सहृदयता नष्ट होगयी है; अतएव सुकवियोंकी कविता सुनने से भी जिन्हे कुछ भी आनन्द नहीं प्राप्त होता, उन्हें असाध्य समझना चाहिए। उनका हृदय पत्थरके समान कडा हो जाता है, उनकी कोमलता बिलकुलही जाती रहतीहै।

न तस्य वक्तृत्वसमुद्भव स्याच्छिक्षाविशेषैरपि सुप्रयुक्तैः ।
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि सन्दर्शित पश्यति नार्कमन्धः ॥

उसे चाहे कैसा ही अच्छा गुरू क्यो न मिले और चाहे कितनी ही अच्छी शिक्षा क्यो न दी जाय वह कवि नहीं हो सकता । सिखलाने से भी क्या गधा कभी गीत गासकता है और हजार दफे दिखलाने से भी क्या अन्धा कभी सूर्य को देख सकता है ।

शिक्षा

कवित्व-शक्ति स्फुरित होजाने पर क्या करना चाहिए—किस तरह शिक्षा से उसकी प्रखरता को वढ़ाना चाहिए—सो भी सुनिए—

प्राप्त-कवित्व-शक्ति कवि को चाहिए कि वह वृत्त-पूरण करने का उद्योग करे, समस्यापूर्ति करे, दूसरे की कविताओं का पाठ किया करे, काव्य के अङ्गो का ज्ञान प्राप्त करे, सत्कवियों की संगति करे महाकवियो के काव्यार्थ का विचार किया करे, प्रसन्न चित्त रहे, अच्छे देश मे रहा करे, नाटको का अभिनय देखे· गाना सुनने का शौक रक्खे, लोकाचार का ज्ञान प्राप्त करे, इतिहास देखे, चित्रकारो के अच्छे-अच्छे चित्रो और शिल्पियो के अच्छे-अच्छे शिल्पकार्यों का अवलोकन करे वीरो का युद्ध देखे, श्मशान और अरण्य मे घूमे और आर्त्त तथा दु खी मनुष्यों के शोक प्रलाप पूर्ण वचन सुने । इन सब वातो से शिक्षा प्राप्त करना उसके लिए वहुत जरूरी है ।

परन्तु इतनी ही शिक्षा वस नहीं और भी उसे वहुत कुछ करना चाहिए, उसे मीठा और स्निग्ध भोजन करना चाहिए; धातुओ को सम रखना चाहिए; कभी शोक न करना चाहिए, दिन मे कुछ सो लेना चाहिए और थोड़ी रात रहे जाग कर अपनी

प्रतिभा को प्रखर करना चाहिए। उस समय कुछ कविता करनी चाहिए; प्राणियो के स्वभाव की परीक्षा करनी चाहिए; समुद्र-तट और पर्वतो की सैर करनी चाहिए; सूर्य्य, चन्द्रमा और तारागणों के स्थान और उनकी गति आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; सब ऋतुओं की विशेषता और उनका भेद समझना चाहिए; सभाओं में जाना चाहिए; एक बार लिखी हुई कविता का संशोधन दो-तीन दफे करके उसे खूब परिमार्जित करना चाहिए।

सुकवि होने की इच्छा रखने वाले के लिए अभी और भी बहुत से काम हैं। उसे पराधीनता में न रहना चाहिए, अपने उत्कर्ष पर गर्व न करना चाहिए, पराये उत्कर्ष को सहने की आदत डालनी चाहिए, दूसरे की श्लाघा सुनकर उसका अभिनन्दन करना चाहिए, अपनी श्लाघा सुनने मे संकोच करना चाहिए, व्युत्पत्ति के लिए—शिक्षा या विद्या-वृद्धि के लिए—सब की शिष्यता स्वीकार करने को तैयार रहना चाहिए; सन्तुष्ट रहना चाहिए, सत्त्वशील बनना चाहिए; किसी से याञ्चा न करनी चाहिए, ग्राम्य और अश्लील बात मुँह से न निकालनी चाहिए, निर्विकार रहना चाहिए; गाम्भीर्य्य धारण करना चाहिए; दूसरे के द्वारा किये गये आक्षेप सुन कर बिगड़ना न चाहिए और किसी के सामने दीनता न दिखानी चाहिए।

कवि के लिए क्षेमेन्द्र ने इस तरह की शत शिक्षाये दी हैं, पर उनमें से हमने यहाँ कुछ ही का उल्लेख किया है, सब का नहीं। इन शिक्षाओ या उपदेशो पर विचार करने से पाठको को मालूम होगा कि कवि-कर्म कितना कठिन है। विधाता की सारी सृष्टि का ज्ञान कवि को होना चाहिए—लोक में जो कुछ है सब से उसे अभिज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को खुद देखना और प्राणियो के स्वभाव से भी उसे परिचित होना चाहिए। ये सब बातें इस समय कौन करता है? फिर कहिए, कोई कवि

कैसे हो सकता है? पिङ्गल पढ़ लेने और काव्य-भास्कर या काव्य कल्पलता देख जाने से यदि कोई कवि हो सकता तो आज कल कवि गली-गली मारे-मारे फिरते । तुकबन्दी करना और चीज़ है, कविता करना और चीज़ ।

चमत्कारोत्पादन

शिक्षित कवि की उक्तियो मे चमत्कार का होना परमावश्यक है । यदि कविता मे चमत्कार नही—कोई विलक्षणता नहीं—तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती । क्षेमेन्द्र की राय है—

"नहि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं
काव्यस्य वा काव्यत्वम्" ।

यदि कवि में चमत्कार पैदा करने की शक्ति नही तो वह कवि नहीं । और यदि चमत्कार-पूर्ण नहीं तो काव्य का काव्यत्व भी नहीं । अर्थात जिस गद्य या पद्य मे चमत्कार नही वह काव्य या कविता की सीमा के भीतर नहीं आ सकता—

एकेन केनचिदनर्घमणिप्रभेण
काव्यं चमत्कृतिपदेन विना सुवर्णम् ।
निर्दोषलेशमपि रोहति कस्य चित्ते
लावण्यहीनमिव यौवनमङ्गनानाम् ॥

काव्य चाहे कैसा ही निर्दोष क्यो न हों; उसके सुवर्ण चाहे कैसे ही मनोहर क्यो न हो—यदि उसमे अनमोल रत्न के समान कोई चमत्कार-पूर्ण पद न हुआ तो वह, स्त्रियो के लावण्य-हीन यौवन के समान, चित्त पर नहीं चढ़ता ।

कविता मे चमत्कार लाना लाख पिंगल पढ़ने और रस, ध्वनि तथा अलङ्कारादि के निरूपक ग्रन्थो के पारायण से सम्भव नहीं । उसके लिए प्रतिभा, साधन, अभ्यास, अवलोकन और मनन की जरूरत होती है । पिङ्गल आदि का पढ़ना एक बहुत ही गौण है ।

एक विरहणी अशोक को देख कर कहती है—तुम खूब फूल रहे हो, लताएँ तुम पर बेतरह छाई हुई है, कलियो के गुच्छे सब कहीं लटक रहे हैं, भ्रमर के समूह जहाँ-तहाँ गुञ्जार कर रहे हैं। परन्तु मुझे तुम्हारा यह आडम्बर पसन्द नही। इसे हटाओ। मेरा प्रियतम मेरे पास नही। अतएव मेरे प्राण कण्ठगत होरहे है।

इस उक्ति मे कोई विशेषता नहीं—इसमे कोई चमत्कार नहीं अतएव इसे काव्य की पदवी नही मिल सकती। अब एक चमत्कार-पूर्ण उक्ति सुनिए। कोई वियोगी रक्ताशोक को देख कर कहता है—नवीन पत्तो से तुम रक्त (लाल) हो रहे हो, प्रियतमा के प्रशसनीय गुणो से मैं भी रक्त (अनुरक्त) हूँ। तुम पर शिली-मुख (भ्रमर) आ रहे है, मेरे ऊपर भी मनसिज के धनुप से छूटे हुए शिलीमुख (बाण) आ रहे है। कान्ता के चरणो का स्पर्श तुम्हारे आनन्द को बढ़ाता है; उसके स्पर्श से मुझे भी परमानन्द होता है। अतएव हमारी तुम्हारी दोनो की अवस्था में पूरी-पूरी समता है। भेद यदि कुछ है तो इतना ही कि तुम अशोक हो और मैं सशोक। इस उक्ति में सशोक शब्द रखने से विशेष चमत्कार आ गया। उसने 'अनमोल रत्न' का काम किया। यह चमत्कार किसी पिङ्गल-पाठ का प्रसाद नहीं और न किसी काव्याङ्ग-विवेचन ग्रन्थ के नियम-परिपालन ही का फल है।

उस दिन हम एक महायात्रा में कुछ लोगो के साथ गङ्गा तट तक गये थे। यात्री की मृत्यु पञ्चक मे हुई थी। शव चिता पर रक्खा गया। अग्नि-संस्कार के समय एक लकडी खिसकी इससे शव का सिर हिल गया। इस पर एक आदमी बोला—लकड़ी खिसकने से सिर हिल गया। यह सुनकर दूसरा बोल उठा—नहीं, नही, अमुक चाचा सिर हिलाकर मना कर रहे है कि अग्नि-संस्कार न करो, हम धनिष्ठा-पञ्चक में मरे हैं। यह उक्ति

यद्यपि एक ग्रामीण का है तथापि इसमे चमत्कार है। कवि को ऐसे ही चमत्कार लाने का उद्योग करना चाहिए।

क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार के चमत्कार बतलाये हैं और सब के उदाहरण भी दिये है। पर प्रबन्ध बढ़ जाने के भय से हम उनका निदर्शन नहीं करते।

गुण-दोष-ज्ञान

काव्य के पाँच प्रकार है—सगुण, निर्गुण, सदोष, निर्दोष और गुण-दोष-मिश्रित। गुण तीन प्रकार के है—शब्दवैमल्य, अर्थवैमल्य और रसवैमल्य। दोष भी तीन प्रकार के—शब्द-कालुष्य, अर्थकालुष्य, रसकालुष्य। इन सबके लक्षण इनके नाम ही से व्यक्त है। इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते।

"कालिदास की निरकुशता" नाम के लेख में शब्द, अर्थ और रस-कालुष्य के कई उदाहरण दिये गये है। काव्य के गुण-दोष के सम्बन्ध मे और भी कितनी ही बातो का विचार उस लेख मे किया गया है। उसे देखने से पाठकों को क्षेमेन्द्र का अभिप्राय समझने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। कवि के निर्दिष्ट दोषो से बचने का यत्न करना चाहिए। परन्तु बचेगा उनसे वही, जो उन्हे जानता होगा। अतएव कविता विषयक गुण दोषो का ज्ञान प्राप्त करना भी कवि के लिए आवश्यक है।

परिचय-चारुता

कवि को सब शास्त्रो, सब विद्याओ और सब कलाओ आदि से परिचित होना चाहिए। क्षेमेन्द्र की आज्ञा है कि तर्क, व्याकरण नाट्य-शास्त्र, काम शास्त्र, राजनीति, महाभारत, रामायण, वेद पुराण, आत्म-ज्ञान, धातुवाद, रत्न परीक्षा, वैद्यक, ज्योतिष, धनुर्वेद, गज-तुरङ्ग, पुरुष-परीक्षा, इन्द्रजाल आदि सब विषयो का ज्ञान कवि को सम्पादन करना चाहिए। कवियो को पद-पद पर

इनसे काम पड़ता है। जो इनसे परिचय नही रखता वह बहुश्रुत नहीं होसकता और विद्वानो की सभा में उसे आदर नहीं मिल सकता। प्राचीन कवियो के काव्यो को देखने से यह साफ़ मालूम होता है कि वे लोग अनेक शास्त्रोके तत्व से अभिज्ञ थे। इसका परिचय उन्होने जगह जगह पर दिया है।

क्षेमेन्द्र जब यह सब बाते लिख चुके तब उन्हे शायद सन्देह हुआ कि उनके कथन को कोई असत्य या अतिशयोक्ति-पूर्ण न समझे। अतएव उन्होंने पुस्तकान्त मे लिखा है—

कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिरां
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनात।
निर्विघ्नप्रतिभा प्रभावशुभगा वाणी प्रमाणीकृता।
सद्भिर्वाग्भवमन्त्रपूतवितत श्रोत्रामृतस्यन्दिनी॥

अर्थात् वाणी की उत्पत्ति के लिए मैने दैव और पौरुपमय दोनो उपायों को किया है और उनसे शुभ-फल की प्राप्ति भी मुझे हुई है। मेरी अब यह कामना है कि उस फल की प्रेरणा या प्रसाद से कवि होने की इच्छा रखने वालों को भी पवित्र कविता करना आजाय। भगवान करे, क्षेमेन्द्र की शुभकामना हमारे वर्तमान कवियो के विपय मे भी फलवती हो। उनसे हमारी एक विनीत प्रार्थना है। वह यह कि यदि वे इस महाकवि के लिखे हुए कण्ठाभरणको कण्ठ मे न धारण करें तो उसे फेक भी न दें और यदि यह कुछ उनसे न कह सके तो यह निबन्ध लिखकर हमने जो अपराध किया है उसे उदारतापूर्वक क्षमा ही करदें।

३—कवि और कविता

इस पुस्तक के आरम्भ में "कवि कर्तव्य" नाम का एक लेख आचुका है। उसमें यह दिखलाया गया है कि कविता को सरस, मनोरञ्जक और हृदय-ग्राहिणी बनाने के लिए कवि को किन-किन बातो का ख्याल रखना चाहिए। क्योंकि अच्छी कविता लिखना सबका काम नहीं पर इस बात का विचार आज-कल के कितने ही पद्य-रचना कर्त्ता बहुत कम करते हैं। उन्होंने कविता लिखना बहुत सहल काम समझ लिया है। वे शायद तुली हुई पंक्तियों को ही कविता समझते है। यह भ्रम है। कविता एक चीज है, तुली हुई शब्द-स्थापना दूसरी चीज।

उर्दू का साहित्य-समूह हिन्दी से बढ़ा चढ़ा है। इस बात को कबूल करना ही चाहिए। हिन्दी के हितैषियो को उचित है कि हिन्दी-साहित्य को उन्नत करके उनकी लाज रक्खे। उर्दू मे इस समय अनेक विषयो के कितने ही ऐसे-ऐसे ग्रन्थ विद्यमान है जिनका नाम तक हिन्दी में नहीं। उर्दू-लेखको मे शम्स-उल-उलमा हाली, आजाद, जकाउल्ला, नजीर अहमद आदि की बराबरी करने वाला हिन्दी मे शायद ही कोई हो। इन साहित्य-सेवियो ने उर्दू के खजानागार को खूब समृद्ध-शाली कर दिया है। हिन्दी वालो को चाहिए कि वे इन लोगों की पुस्तके पढ़ें और

वैसी ही पुस्तके हिन्दी मे लिखने की कोशिश करें। इनमे से आज हमे हाली के विषय मे कुछ कहना है।

शम्स-उल-उलमा मौलाना अल्ताफहुसैन हाली उर्दू के बहुत बड़े कवि हैं। आपने उर्दू मे नई तरह की कविता की नींव डाली है। आपकी "मुसद्दस" नाम की कविता गजब की है। जिन्होने इसे न पढ़ा हो जरूर पढ़ें। आप देहली के पास, पानीपत के रहने वाले है। देहली के प्रसिद्ध कवि असदुल्लाखाँ (ग़ालिब) की कृपा से आपने कविता सीखी। पहले आप लाहौर में मुलाजिम थे। वहाँ से देहली आये। अब आप शायद पानीपत मे मकान ही पर रहते हैं*। बूढ़े हो गये है। आपने कई अच्छी अच्छी पुस्तके लिखी है। कविता में आपका बड़ा नाम है। आपने "मुकद्दमा" नाम का एक लेख लिखा है। यह लेख आपके "दीवान" के साथ छपा है। इस लेख मे आपने कवि और कविता पर अपने विचार बड़ी योग्यता से प्रकट किये हैं। प्रायः उसीके आधार पर हम ये लेख लिखते है।

यह बात सिद्ध समझी गयी है कि अच्छी कविता अभ्यास से नहीं आती। जिसमे कविता करने का स्वाभाविक माद्दा होता है, वही कविता कर सकता है। देखा गया है कि जिस विषय पर बड़े-बड़े विद्वान् अच्छी कविता नहीं कर सकते उसी पर अपढ़ और कम उम्र लड़के कभी-कभी अच्छी कविता लिख देते हैं इससे यह स्पष्ट है कि किसी-किसी में कविता लिखने की इस्तेदाद स्वाभाविक होती है, ईश्वरदत्त होती है। जो चीज ईश्वरदत्त है वह अवश्य लाभदायक होगी। वह निरर्थक नहीं हो सकती। उससे समाज को कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य पहुँचता है। अतएव यदि कोई यह समझता हो कि कविता करना व्यर्थ है

* खेद है, आपका देहान्त हो गया। १९१९।

तो यह उसकी भूल है। हाँ कविता के लक्षणो से च्युत. तुले हुये वर्णों या मात्राओ की पद्य नामक पंक्तियाँ व्यर्थ हो सकती हैं। आजकल प्राय: ऐसी ही पद्य-मालिकाओ का प्राचुर्य्य है। इससे यदि कविता को कोई व्यर्थ समझे तो आश्चर्य नही।

कविता यदि यथार्थ मे कविता है तो सम्भव नहीं कि उसे सुनकर सुनने वाले पर कुछ असर न हो। कविता से दुनियाँ में आज तक बहुत बड़े-बड़े काम हुये हैं। इस बात के प्रमाण मौजूद है। अच्छी कविता सुनकर कविता-गत रस के अनुसार दु:ख, शोक, क्रोध, करुणा और जोश आदि भाव पैदा हुये बिना नही रहते। जैसा भाव मन मे पैदा होता है, कार्य के रूप में फल भी वैसा ही होता है। हम लोगो मे, पुराने जमाने मे, भाट, चारण आदि अपनी-अपनी कविता ही की बदौलत वीरो में वीरता का संचार कर देते थे। पुराणादि मे कारुणिक-प्रसंगो का वर्णन सुनने और उत्तर रामचरित्र आदि दृश्य-काव्यों का अभिनय देखने से जो अश्रुपात होने लगता है वह क्या है? वह अच्छी कविता ही का प्रभाव है। पुराने जमाने मे ग्रीस के एथेन्स नगर वाले मेगारा वालो से वैरभाव रखते थे। एक टापू के लिये उनमे कई दफे लड़ाइयाँ हुईं। पर हर बार एथेन्स वालो ही की हार हुई। इस पर सोलन नाम के विद्वान् को बड़ा दु:ख हुआ। उसने एक कविता लिखी। उसे उसने एक ऊँची जगह पर चढ़कर एथेन्स वालोको सुनाया। कविता का भावार्थ यह था।

"मै एथेन्स मे न पैदा होता तो अच्छा था। मैं किसी और देश में क्यो न पैदा हुआ? मुझे ऐसे देश में पैदा होना था जहां के निवासी मेरे देशवासियो से अधिक वीर, अधिक कठोर-हृदय और उनकी विद्या से बिलकुल बेखबर हो। मैं अपनी वर्तमान अवस्था की अपेक्षा उस अवस्था मे अधिक सन्तुष्ट होता। यदि

मै किसी ऐसे देश मे पैदा होता तो लोग मुझे देखकर यह तो न कहते कि यह आदमी उसी एथेन्स का रहने वाला है, जहाँ वाले मेगारा के निवासियो से लड़ाई मे हार गये और लड़ाई के मैदान से भाग निकले। प्यारे देशबन्धु, अपने शत्रुओ से जल्द इसका बदला लो। अपने इस कलङ्क को फौरन धो डालो। अपने लज्जाजनक पराजय के अपयश को दूर कर दो। जब तक अपने अन्यायी शत्रुओ के हाथ से अपना छिना हुआ देश न छुड़ा लो तबतक एक मिनट भी चैन से न बैठो।" लोगो के दिल पर इस कविता का इतना असर हुआ कि फौरन मेगारा वालो पर फिर चढ़ाई कर दी गई और जिस टापू के लिए यह बखेड़ा हुआ था उसे एथेन्स वालो ने लेकर चैन ली। इस चढ़ाई मे सालन ही सेनापति बनाया गया था।

रोम, इग्लैंड अरब, फारस आदि देशो मे इस बात के सैकड़ों उदाहरण मौजूद है कि कवियो ने असम्भव बाते सम्भव कर दिखाई हैं। जहाँ पस्तहिम्मती का दौर दौरा था, वहाँ जोश पैदा कर दिया है। जहाँ शान्ति थी, वहाँ गदर मचा दिया है। अतएव कविता एक एक साधारण चीज है। परन्तु बिरले ही को सत्कवि होने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

जब तक ज्ञान-वृद्धि नही होती—जब तक सभ्यता का जमाना नहीं आता—तभी तक कविता की विशेप उन्नति होती है। क्योकि सभ्यता और कविता मे परस्पर विरोध है। सभ्यता और विद्या की वृद्धि होने से कविता का असर कम हो जाता है। कविता मे कुछ न कुछ झूठ का अंश जरूर रहता है। असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य लोगों को यह अंश कम खटकता है, शिक्षित और सभ्य लोगो को वहुत। तुलसीदास की रामायण के खास-खास स्थलो का जितना प्रभाव स्त्रियो पर पड़ता है उतना पढ़े लिखे आदमियो पर नही। पुराने काव्यो को पढ़ने से लोगों का

चित्त जितना पहले आकृष्ट होता था उतना अब नही होता। हजारो वर्ष से कविता का क्रम जारी है। जिन प्राकृतिक बातो का वर्णन कवि करते है उनका बर्णन बहुत कुछ अब तक हो चुका। जो नये कवि होते है वे भी उलट फेरसे प्रायः उन्ही बातो का वर्णन करते है। इसीसे अब कविता कम हृदय-ग्राहिणी होती है।

संसार मे जो बात जैसी देख पड़े कवि को उसे वैसा ही वर्णन करना चाहिये। उसके लिये किसी तरह की रोक या पावन्दी का होना अच्छा नही। दवाव से कवि का जोश दब जाता है उसके मन से जो भाव आप ही आप पैदा होते है उन्हें जब वह निडर होकर अपनी कविता मे प्रकट करता है तभी उसका असर लोगो पर पूरा-पूरा पड़ता है। बनावट से कविता बिगड़ जाती है। किसी राजा या किसी व्यक्ति विशेप के गुण दोषो को देखकर कवि के मन मे जो भाव उद्भूत हों उन्हे यदि वह बेरोक टोक प्रकट करदे तो उसकी कविता हृदयद्रावक हुए बिना न रहे। परन्तु परतन्त्रता; या पुरस्कार-प्राप्ति या और किसी कारण से, सच बात कहने मे किसी तरह की रुकावट पैदा हो जाने से यदि उसे अपने मन की बात कहने का साहस नहीं होता तो कविता का रस जरूर कम हो जाता है। इस दशा मे अच्छे कवियो की भी कविता नीरस, अतएव प्रभाव हीन हो जाती है सामाजिक और राजनैतिक विपयो मे कटु होने के कारण, सच कहना भी जहाँ मना है, वहाँ इन विषयो पर कविता करने वाले कवियो की उक्तियो का प्रभाव क्षीण हुए बिना नहीं रहता। कवि के लिये कोई रोक नही होनी चाहिये अथवा जिस विषय मे रोक हो उस विपय पर कविता ही न लिखनी चाहिये। नदी, तालाब, बन, पर्वत, फूल, पत्ती, गरमी सरदी आदि ही के वर्णन से उसे संतोष करना उचित है।

खुशामद के ज़माने मे कविता की बुरी हालत होती है । जो कवि राजाओ, नवाबो या बादशाहो के आश्रय में रहते है, अथवा इनको खुश करने के इरादे से कविता करते है, उनको खुशामद करनी पड़ती है। वे अपने आश्रय-दाताओं की इतनी प्रशंसा करते हैं, इतनी स्तुति करते हैं कि उनकी उक्तियाँ असलियत से बहुत दूर जा पड़ती हैं। इससे कविता को बहुत हानि पहुचती है। विशेप करके शिक्षित और सभ्य देशो मे कवि का काम, प्रभावोत्पादक रीति से, यथार्थ घटनाओ का वर्णन करना है; आकाश-कुसुमो के गुलदस्ते तैयार करना नहीं। अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों ने अतिशयोक्ति एक अलङ्कार जरूर माना है। परन्तु अभावोक्तियां भी क्या कोई अलङ्कार है ? किसी कवि की बेसिर-पैर की बाते सुनकर किस समझदार आदमी को आनन्द प्राप्त होसकता है ? जिस समाज के लोग अपनी झूठी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते है वह समाज कभी प्रशंसनीय नहीं समझा जाता। काबुल के अमीर हबीबुल्लाखाँ ने अपनी कविता-बद्ध निराधार प्रशंसा सुनने से, अभी कुछ दिन हुए, इनकार कर दिया। खुशामद-पसन्द आदमी कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते।

कारण-वश अमीरो की झूठी प्रशंसा करने, अथवा किसी एक ही विषय का कविता मे कवि-समुदाय के आमरण लगे रहने से कविता की सीमा कट-छँटकर बहुत थोडी रह जाती है। इस तरह की कविता उर्दू मे बहुत अधिक है। यदि यह कहें कि आशिकाना (शृङ्गारिक) कविता के सिवा और तरह की कविता उर्दू मे है ही नहीं, तो बहुत बडी अत्युक्ति न होगी। किसी दीवान को उठाइये, किसी मसनवी को उठाइये, आशिक-माशूकों के रङ्गीन रहस्यो से आप उसे आरम्भ से अन्त तक रँगी हुई पाइयेगा। इश्क भी यदि सच्चा हो तो कविता में कुछ असलियत

आसकती है। पर क्या कोई कह सकता है कि आशिकाना शेर कहने वालों का सारा रोना, कराहना, ठंडी सासे लेना, जीते ही अपनी कब्रो पर चिराग जलाना सब सच है ? सब न सही उनके प्रलापो का क्या थोड़ा सा भी अंश सच है ? फिर इस तरह की कविता सैकड़ो वर्षों से होती आरही है। अनेक कवि होचुके, जिन्होने इस विषय पर न मालूम क्या-क्या लिख डाला है। इस दशा मे नये कवि अपनी कविता मे नयापन कैसे ला सकते है ? वही तुक, वही छन्द, वही शब्द, वही उपमा, वही रूपक ! इस पर भी लोग पुरानी लकीर को बराबर पीटते जाते हैं। कवित्त, सवैए, घनाक्षरी, दोहे, सोरठे लिखने से बाज नही आते। नख शिख, नायिका-भेद, अलङ्कार शास्त्र पर पुस्तको पर पुस्तके लिखते चलेजाते है। अपनी व्यर्थ बनावटी बातो से देवी-देवताओ तक को बदनाम करने से नहीं सकुचाते। फल इसका यह हुआ कि कविता की असलियत काफूर होगई है। उसे सुनकर सुनने वाले के चित्त पर कुछ भी असर नही होता, उलटा कभी मन मे घृणा का उद्रेक अवश्य उत्पन्न होजाता है।

कविता के बिगड़ने और उसकी सीमा परिमित होजाने से साहित्य पर भारी आघात होता है। वह बरबाद होजाता है। भाषा मे दोष आजाता है। जब कविता की प्रणाली बिगड़ जाती है, तब उसका असर सारे ग्रन्थकारो पर पड़ता है यही क्यों, सर्वसाधारण की बोल-चाल तक मे कविता के दोष आ जाते है। जिन शब्दो, जिन भावो, जिन उक्तियो का प्रयोग कवि करते है उन्ही का प्रयोग और लोग भी करने लगते हैं। भाषा और बोलचाल के सम्बन्ध मे कवि ही प्रमाण माने जाते हैं। कवियों ही के प्रयुक्त शब्दो और मुहावरों को कोपकार अपने कोपों मे रखते हैं। मतलब यह है कि भाषा और बोल-चाल का बनाना या बिगाड़ना प्राय: कवियो ही के हाथ मे रहता है। जिस

भाषा के कवि अपनी कविता में बुरे शब्द और बुरे भाव भरते रहते हैं, उस भाषा की उन्नति तो होती नही, उलटी अवनति होती जाती है।

कविता-प्रणाली के बिगड़ जाने पर यदि कोई नये तरह की स्वाभाविक कविता करने लगता है तो लोग उसकी निन्दा करते हैं। कुछ नासमझ और नादान आदमी कहते है, यह बड़ी भद्दी कविता है। कुछ कहते हैं, यह कविता ही नही। कुछ कहते हैं कि यह कविता तो "छन्दोदिवाकर" मे दिये गये लक्षणो से च्युत है, अतएव यह निर्दोष नही। बात यह है कि जिसे अब तक कविता कहते आये हैं, वही उनकी समझ मे कविता है और सब कोरी काँव-काँव! इसी तरह की नुकताचीनी से तङ्ग आकर अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ ने अपनी कविता को सम्बोधन करके उसको सान्त्वना दी है। वह कहता है—"कविते! यह बेकदरी का जमाना है। लोगो के चित्त को तेरी तरफ खींचना तो दूर रहा, उलटी सब कहीं तेरी निन्दा होती है। तेरी बदौलत सभा-समाजो और जलसो मे मुझे लज्जित होना पड़ता है। पर जब मै अकेला होता हूँ तब तुझ पर मैं घमण्ड करता हूँ। याद रख, तेरी उत्पत्ति स्वाभाविक है। जो लोग अपने प्राकृतिक बल पर भरोसा रखते है, वे निर्धन होकर भी आनन्द से रह सकते हैं। पर अप्राकृतिक बल पर किया गया गर्व कुछ दिन बाद जरूर चूर्ण हो जाता है।"

गोल्डस्मिथ ने इस विषय में बहुत कुछ कहा है, पर हमने उसके कथन का सारांश बहुत ही थोड़े शब्दों मे दे दिया है। इससे प्रकट है कि नई कविता-प्रणाली पर भृकुटी टेढ़ी करने वाले कवि प्रकाण्डो के कहने की कुछ भी परवा न करके अपने स्वीकृत पथ से जरा भी इधर-उधर होना उचित नहीं समझते। नई बातो से घबराना और उनके पक्षपातियो की निन्दा करना मनुष्य का

स्वभाव ही-सा हो गया है। अतएव नई भाषा और नई कविता पर यदि कोई नुकताचीनी करे तो आश्चर्य नही।

आजकल लोगो ने कविता और पद्य को एक ही चीज समझ रक्खा है। यह भ्रम है। कविता और पद्य मे वही भेद है जो अँग्रेजी की पोयट्री (Poetry) और वर्स (Verse) मे है। किसी प्रभावोत्पादक और मनोरञ्जक लेख, बात या वक्तृता का नाम कविता है, और नियमानुसार तुली हुई सतरो का नाम पद्य है। जिस पद्य के पढ़ने या सुनने से चित्त पर असर नही होता, वह कविता नही। वह नपी-तुली शब्द-स्थापना मात्र है। गद्य और पद्य दोनो मे कविता हो सकती है। तुकबन्दी और अनुप्रास कविता के लिए अपरिहार्य्य नही। संस्कृत का प्रायः सारा पद्य-समूह बिना तुकबन्दी का है और संस्कृत से बढ़कर कविता शायद ही किसी और भाषा में हो। अरब में भी सैकड़ों अच्छे-अच्छे कवि हो गये हैं। वहाँ भी शुरू-शुरू में तुकबन्दी का बिलकुल ख्याल न था। अँग्रेजी में भी अनुप्रासहीन बेतुकी कविता होती है। हाँ, एक ज़रूरी बात है कि वजन और काफिये से कविता अधिक चित्ताकर्षक हो जाती है। पर कविता के लिए ये बातें ऐसी ही हैं जैसे शरीर के लिए वस्त्राभरण। यदि कविता का प्रधान धर्म मनोरञ्जकता और प्रभावोत्पादकता उसमें न हो तो इनका होना निष्फल समझना चाहिए। पद्य के लिए काफिये वग़ैरह की जरूरत है, कविता के लिए नहीं। कविता के लिए तो ये बाते एक प्रकार से उलटी हानिकारक हैं। तुले हुए शब्दो में कविता करने और तुक, अनुप्रास आदि ढूँढ़ने से कवियों के विचार-स्वातन्त्र्य में बड़ी बाधा आती है। पद्य के नियम कवि के लिए एक प्रकार की बेड़ियाँ हैं। उनसे जकड़ जाने से कवियो को अपने स्वाभाविक उड़ान मे कठिनाइयो का सामना करना पडता है। कवि का काम है कि वह अपने मनोभावो को स्वाधीनता

पूर्वक प्रकट करे। पर काफिया और वजन उसकी स्वाधीनता में विघ्न डालते हैं। वे उसे अपने भावो को स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं प्रकट होने देते। काफिये और वजन को पहले ढूंढ कर कवि को अपने मनोभाव तदनुकूल गढ़ने पड़ते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रधान बात अप्रधानता को प्राप्त हो जाती है और एक बहुत ही गौण बात प्रधानता के आसन पर जा बैठती है। इससे कवि अपने भाव स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं प्रकट कर सकता। फल यह होता है कि कवि की कविता का असर कम हो जाता है। कभी-कभी तो वह बिल्कुल ही जाता रहता है। अब आप ही कहिए कि जो वजन और काफिया कविता के लक्षण का कोई अंश नहीं उन्हें ही प्रधानता देना भारी भूल है या नहीं?

जो बात एक असाधारण और निराले ढंग से शब्दो के द्वारा इस तरह प्रकट की जाय कि सुनने वाले पर उसका कुछ न कुछ असर जरूर पड़े, उसी का नाम कविता है। आज-कल हिन्दी में जो सज्जन पद्य-रचना करते हैं और उसे कविता समझ कर छपाने दौड़ते है, उनको यह बात जरूर याद रखनी चाहिए। इन पद्य-रचयिताओ मे कुछ ऐसे भी है जो अपने पद्यो को कालिदास, होमर और बाइरन की कविता से बढ़ कर समझते है। यदि कोई सम्पादक उन्हें प्रकाशित करने से इन्कार करता है तो वे अपना अपमान समझते है और बेचारे सम्पादक के खिलाफ नाटक, प्रहसन और व्यङ्ग-पूर्ण लेख प्रकाशित करके अपने जी की जलन शान्त करते है। वे इस बात को बिल्कुल ही भूल जाते हैं कि यदि उनकी पद्य-रचना अच्छी हो तो कौन ऐसा मूर्ख होगा जो उसे अपने पत्र या पुस्तक मे सहर्ष और सधन्यवाद न प्रकाशित करेगा?

कवि का सब से बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है। इसके लिए कल्पना (Imagination) की बड़ी जरूरत है। जिस

मे जितनी ही अधिक यह शक्ति होगी वह उतनी ही अधिक अच्छी कविता लिख सकेगा। कविता के लिये उपज चाहिए। नये-नये भावो की उपज जिसके हृदय में नहीं वह कभी अच्छी कविता नही लिख सकता। ये बाते प्रतिभा की बदौलत होती हैं। इसी लिए संस्कृत वालो ने प्रतिभा को प्रधानता दी है प्रतिभा ईश्वर-दत्त होती है। अभ्यास से वह नहीं प्राप्त होती है। इस शक्ति को कवि माँ के पेट से लेकर पैदा होता है। इसी की बदौलत वह भूत और भविष्यत् को हस्तामलकवत् देखता है वर्तमान की तो कोई बात ही नहीं। इसी की कृपा से वह सांसारिक बातों को एक अजीब निराले ढंग से बयान करता है, जिसे सुन कर सुनने वाले के हृदयोदधि में नाना प्रकार के सुख, दु:ख आश्चर्य आदि विकारो की लहरें उठने लगती हैं। कभी-कभी ऐसी अद्भुत बाते कह देते है कि जो कवि नही हैं उनकी पहुँच वहाँ तक कभी हो ही नहीं सकती।

कवि का काम है कि वह प्रकृति विकास को खूब ध्यान से देखे। प्रकृति की लीला का कोई ओर-छोर नहीं। वह अनन्त है। प्रकृति अद्भुत खेल खेला करती है। एक छोटे-से फूल में वह अजीब अजीब कौशल दिखाती है। वे साधारण आदमियो के ध्यान मे नही आते। वे उनको समझ नही सकते। पर कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के कौशल अच्छी तरह देख लेता है, उनका वर्णन भी करता है; उनसे नाना प्रकार की शिक्षा भी ग्रहण करता है, और अपनी कविता के द्वारा संसार को लाभ भी पहुँचाता है जिस कवि मे प्राकृतिक दृश्य और प्रकृति के कौशल देखने और समझने का जितना ही अधिक ज्ञान होता है वह उतना ही बड़ा कवि भी होता है।

प्रकृति-पर्य्यालोचना के सिवा कवि को मानव-स्वभाव की आलोचना का भी अभ्यास करना चाहिए। मनुष्य अपने जीवन

मे अनेक प्रकार के सुख, दुःख आदि का अनुभव करता है। उसकी दशा कभी एक-सी नहीं रहती। अनेक प्रकार के विकार-तरङ्ग उसके मन में उठा ही करते हैं। इन विकारो की जाँच, ज्ञान और अनुभव करना सबका काम नही। केवल कवि ही इनके अनुभव करने और कविता द्वारा औरो को इनका अनुभव कराने में समर्थ होता है। जिसे कभी पुत्र-शोक नहीं हुआ, उसे उस शोक का यथार्थ ज्ञान होना सम्भव नही। पर यदि वह कवि है तो वह पुत्र-शोकाकुल माता या पिता की आत्मा मे प्रवेश सा करके उसका अनुभव कर लेता है। उस अनुभव का वह इस तरह वर्णन करता है कि सुनने वाला तन्मनस्क होकर उस दुख से अभिभूत होजाता है। उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि स्वयं उसी पर वह दुख पड़ रहा है। जिस कवि को मनो-विकारो और प्राकृतिक बातो का यथेष्ट ज्ञान नही वह कदापि अच्छा कवि नहीं होसकता।

हाली के मुकद्दमे को पढ़कर हमारे एक मित्र महाशय ने कुछ अलङ्कार-शास्त्र के आचार्यों की राय लिखी है और संक्षेपतया यह दिखलाया है कि हमारे अलङ्कारिकों ने कविता के लिए किन-किन बातो की जरूरत समझी है। आपके कथनका आशय हम नीचे देते हैं। पाठक देखेगे कि हालीकी राय सस्कृत-साहित्य के आचार्यों से बहुत कुछ मिलती है। सुनिए—

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतञ्च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥

(आचार्य दण्डी—काव्यादर्श)

अर्थात् स्वाभाविकी प्रतिभा अर्थात् शक्ति (१); शब्द-शास्त्रादि तथा लोकोचारादि का विशुद्ध ज्ञान (२) और प्रगाढ़ अभ्यास (३) यह सब मिलकर काव्य-रूप सम्पत्ति का कारण

है—"श्रुत" शब्द के अर्थ पंडित जीवानन्द विद्यासागर ने ये किये है—"श्रुत"शास्त्रज्ञानं लोकाचारादिज्ञानञ्च" । सृष्टि-कार्य और मानव-स्वभाव इन दोनो के ज्ञान का बोध लोकाचारादि ज्ञान है। उसका उल्लेख हाली ने अपनी दूसरी और तीसरी शर्त 'सृष्टिकार्य पर्यालोचना' और 'शब्दविन्यास चातुर्य' मे किया है। प्रगाढ़ अभ्यास की आवश्यकता हाली ने "आमद और आवुर्द में फ़र्क"—इस विषय पर बहस करते हुए सिद्ध की है।

इसी अभिप्राय का एक श्लोक यह भी है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकार्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

अर्थात् प्रतिभाशक्ति, काव्यादि शास्त्र तथा लोकाचारादि के अवलोकन से प्राप्त हुई निपुणता और काव्यो की शिक्षा के अनुसार अभ्यास, ये तीनो बाते कविता के उद्भव मे हेतु है। कई आचार्यों ने प्रतिभा ही को काव्य का कारण मानकर व्युत्पत्ति को उसकी सुन्दरता और अभ्यास को वृद्धि का हेतु माना है यथा—

कवित्वं जायते शक्तेर्वर्द्धऽभ्यासयोगतः ।
तस्य चारुत्वनिष्पत्तौ व्युत्पत्तिस्तु गरीयसी ॥

इस मत की पुष्टि भी हाली के उस लेख से होती है, जो उन्होने सब से पहली शर्त "तख़य्युल" (प्रतिभा) पर लिखा है।

इन्ही सब बातो को हाली ने अपने मुकद्दमे मे, ३७ से ४४ पृष्ट तक, उदाहरणादिको से पल्लवित किया है।

सृष्टि-कार्य-निरीक्षण की आवश्यकता कवि को क्यो है ? इस बात का हाली ने 'मसनवी' पर बहस करते हुए, एक उदाहरण द्वारा, समझाया है। वे लिखते हैं—

…'इसी प्रकार क़िस्से में ऐसी छोटी-छोटी प्रासङ्गिक बातो का बयान करना, जिन्हे तजरबा और मशाहिदा झुटलाते हो,

कदापि उचित नहीं। इससे आख्यायिकार का इतना बेसलीकापन साबित नहीं होता, जितनी उसकी अज्ञता और लोकवृत्तान्त से अनभिज्ञता, या जरूरी अनुभव प्राप्त करने से बेपरवाई साबित होती है। जैसाकि "बदरे मुनीर" में एक खास मौके और वक्त का समाँ इस तरह बयान किया है—

> वो गाने का आलम वो हुस्ने बुताँ,
> वो गुलशन की खूबी वो दिन का समाँ।
> दरख्तो की कुछ छाँव और कुछ वो धूप,
> वो धानों की सब्जी वो सरसों का रूप॥

आखीर मिसरे से साफ प्रतीत होता है कि एक तरफ धान खड़े थे और एक तरफ सरसों फूल रही थी। मगर यह बात वाक़े के खिलाफ है, क्योंकि धान खरीफ में होते हैं और सरसो रबी में, गेहुंओ के साथ बोई जाती है।

कवि-कुल-गुरु कालिदास के विश्व-विख्यात काव्य, तथा कविवर बिहारीलाल की सतसई से, इसी विषय का, एक एक प्रत्युदाहरण सुनिये—

> इक्षुच्छायनिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
> आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥
>
> रघुवंश॥

रघु की दिग्विजयार्थ यात्रा के उपोद्घात में शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ईख की छाया में बैठी हुई धान रखाने वाली स्त्रियाँ रघु का यश गाती थीं। शरद्-काल में जब धान के खेत पकते हैं तब वह इतनी-इतनी बड़ी होजाती है कि उसकी छाया में बैठकर खेत रखा सकें। ईख और धान के खेत भी प्रायः पास ही पास हुआ करते है। कवि को ये सब बाते विदित थीं। श्लोक में इस दशा का—इस वास्तविक घटना का—

चित्र-सा खींच दिया गया है। श्लोक पढ़ते ही वह समाँ आँखों में फिरने लगता है।

महाराजाधिराज विक्रमादित्यके सखा, राजसी ठाठ से रहने वाले कालिदास, ने ग़रीब किसानो की, नगर से दूर, जङ्गल से सम्बन्ध रखने वाली एक वास्तविक घटनाका कैसा मनोहर चित्र उतारा है। यह उनके प्रकृति-पर्यालोचक होने का दृढ़ प्रमाण है। दूसरा प्रत्युदाहरण—

सन सूक्यौ बीत्यौ बनौ ऊखौ लई उखारि।
हरी-हरी अरहर अजौ धर धर हर हिय नारि॥

—सतसई

पहले सन सूखता है, फिर बनबाड़ी या कपासके खेतकी बहार खतम होती है। पुनः ईख के उखड़ने की बारी आती है। और इन सब से पीछे गेहुओं के साथ तक, अरहर हरी-भरी खड़ी रहती है।

ये सब बाते कवि ने कैसे सुन्दर और सरल ढङ्ग से क्रम-पूर्वक इस दोहे में बयान की हैं। इसमे अनुप्रास की छटा आदि अन्य काव्य-गुणों पर ध्यान दिलाने का यह अवसर नहीं। यहाँ तक पूर्वोक्त महाशय की राय हुई।

कविता को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उचित शब्द-स्थापना की भी बड़ी जरूरत है। किसी मनोविकार का दृश्य के वर्णन मे ढूंढ़-ढूंढ़ कर ऐसे शब्द रखने चाहिये जो सुनने वाले की आँखो के सामने वर्ण्य-विषय का चित्र-सा खींच दे। मनो-भाव चाहे कैसा ही अच्छा क्यो न हो, यदि वह तदनुकूल शब्दों में न प्रकट किया गया तो उसका असर यदि जाता नही रहता तो कम जरूर हो जाता है। इसीलिये कवि को चुन-चुन कर ऐसे शब्द रखने चाहिये, और इस क्रम से रखने चाहिये; जिससे

उसके मन का भाव पूरे तौर पर व्यक्त हो जाय। उसमें कसर न पड़े। मनोभाव शब्दों ही के द्वारा व्यक्त होता है। अतएव युक्ति सङ्गत शब्द-स्थापना के बिना कवि की कविता तादृश हृदय-हारिणी नहीं हो सकती। जो कवि अच्छी शब्द-स्थापना करना नहीं जानता, अथवा यो कहिए कि जिसके पास काफी शब्द-समूह नही है, उसे कविता करने का परिश्रम ही न करना चाहिए, जो सुकवि हैं उन्हे एक-एक शब्द की योग्यता ज्ञात रहती है। वे खूब जानते हैं कि किस शब्द में क्या प्रभाव है। अतएव जिस शब्द मे उनका भाव प्रकट करने की एक बाल भर भी कमी होती है उसका वे कभी प्रयोग नही करते। आजकल के पद्य-रचना-कर्त्ता महाशयो को इस बात का बहुत कम ख्याल रहता है। इसी से उनकी कविता, यदि अच्छे भाव से भरी हुई भी हो तो भी, बहुत कम असर पैदा करती है। जो कवि प्रति पक्ति मे निरर्थक 'सु' 'जु' और 'रु' का प्रयोग करता है वह मानो इस बात का खुद ही सार्टिफिकेट दे रहा है कि मेरे अधिकृत शब्द कोश में शब्दो की कमी है। ऐसे कवियो की कविता कदापि सर्व-सम्मत और प्रभावोत्पादक नही हो सकती।

अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने कविता के तीन गुण वर्णन किये हैं। उनकी राय है कि कविता सादी हो, जोश से भरी हुई हो, और असलियत से गिरी हुई न हो।

सादगी से यह मतलब नहीं कि सिर्फ शब्द-समूह ही सादा हो, किन्तु विचार-परम्परा भी सादी हो। भाव और विचार ऐसे सूक्ष्म और छिपे हुए न हो कि उनका मतलब समझ मे न आवे, या देर से समझ मे आवे। यदि कविता मे कोई ध्वनि हो तो इतनी दूर की न हो, जो उसे समझने मे गहरे विचार की जरूरत हो। कविता पढ़ने या सुनने वाले को ऐसी साफ-सुथरी सड़क मिलनी चाहिए जिस पर कंकड़, पत्थर, टीले, खन्दक, काँटे और

झाड़ियों का नाम न हो। वह खूब साफ और हमवार हो, जिससे उस पर चलने वाला आराम से चला जाय। जिस तरह सडक जरा भी ऊंची नीची होने बाइसिकल (पैरगाड़ी) के सवार को दचके लगते हैं उसी तरह कविता की सडक यदि थोडी भी नाहमवार हुई तो पढने वाले के हृदय पर धक्का लगे विना नहीं रहता। कविता-रूपी सडक के इधर-उधर स्वच्छ पानी के नदी-नाले बहते हों, दोनो तरफ फलो-फूलो से लदे हुए पेड हों, जगह-जगह पर विश्राम करने योग्य स्थान बने हो; प्राकृतिक दृश्यो की नयी-नयी झॉकियाँ ऑखो को लुभाती हो। दुनियाँ में आज तक जितने अच्छे-अच्छे कवि हुए है उनकी कविता ऐसी ही देखी गयी है। अटपटे भाव और अटपटे शब्द-प्रयोग करने वाले कवियो की कभी क़द्र नही हुई। यदि कभी किसी की कुछ हुई भी है तो थोड़े ही दिनो तक। ऐसे कवि विस्मृति के अन्धकार में ऐसे छिप गए है कि इस समय उनका कोई नाम तक नहीं जानता। एक मात्र सूची शब्द-झङ्कार ही जिन कवियो की करामात है उन्हें चाहिए कि वे एक दम ही बोलना बन्द कर दे।

भाव चाहे कैसा ही ऊंचा क्यों न हो, पेचीदा न होना चाहिए। वह ऐसे शब्दो के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए, जिनसे सब लोग परिचित हो। मतलब यह कि भाषा बोल-चाल की हो। क्योंकि कविता की भाषा बोल-चाल से जितनी ही अधिक दूर जा पड़ती है उतनी ही उसकी सादगी कम हो जाती है। बोल-चाल से मतलब उस भाषा से है, जिसे खास और आम सब बोलते, विद्वान् और अविद्वान् दोनों जिसे काम मे लाते है। इसी तरह कवि को मुहाविरे का भी ख्याल रखना चाहिए। जो मुहावरे सर्व सम्मत है, उसी का प्रयोग करना चाहिए। हिन्दी और उर्दू में कुछ शब्द अन्य भाषाओ के भी आ गये है।

व यदि बोल-चाल के है तो उनका प्रयोग सदोष नही माना जा सकता। उन्हे त्याज्य नही समझना चाहिए। कोई-कोई ऐसे शब्दो को उनके मूल-रूप मे लिखना ही सही समझते है। पर यह उनकी भूल है। जब अन्य भाषा का कोई शब्द किसी और भाषा मे आ जाता है तब वह उसी भाषा का हो जाता है। अतएव उसे उसकी मूल भाषा के रूप मे लिखते जाना भाषा विज्ञान के नियमो के खिलाफ है। खुद 'मुहावरह' शब्द ही को देखिए। जब उसे अनेक लोग हिन्दी मे 'मुहाविरा' लिखने और बोलने लगे तब उसका असली रूप जाता रहा। वह हिन्दी का शब्द हो गया। यदि अन्य भाषाओ के बहु-प्रयुक्त शब्दो का मूल रूप ही शुद्ध माना जायगा तो घर, बड़ा, हाथ, पॉव, नाक, कान, गश, मुसलमान, कुरान, मैगजीन, एडमिरल, लालटेन आदि शब्दो को भी उनके पूर्व रूप मे ले जाना पड़ेगा। एशियाटिक सोसाइटी के जनवरी १६०७ के जर्नल मे फ्रेंच और अँगरेजी आदि यूरोपियन भाषाओ के १३८ शब्द ऐसे दिये गये है जो फ़ारस के फारसी अखबारो में प्रयुक्त है। इनमें से कितने ही शब्दो का रूपान्तर हो गया है। अब यदि इस तरह के शब्द अपने मूल रूप में लिखे जायंगे तो भाषा मे बेतरह गडबड़ पैदा हो जायगी।

असलियत से मतलब यह नहीं कि कविता एक प्रकार का इतिहास समझा जाय और हर बात मे सचाई का ख्याल रक्खा जाय। यह नहीं कि सचाई की कसौटी पर कसने पर यदि कुछ भी कसर मालूम हो तो कविता का कवितापन जाता रहे। असलियत से सिर्फ इतना ही मतलब है कि कविता बेबुनियाद न हो उसमें जो उक्ति हो वह मानवी मनोविकारों और प्राकृतिक नियमों के आधार पर कही गई हो। स्वाभाविकता से उसका लगाव न छूटा हो। कवि यदि अपनी या और किसी की तारीफ

करने लगे और यदि वह उसे सचमुच ही सच समझे अर्थात् यदि उसकी भावना वैसी ही हो, तो वह भी असलियत से खाली नहीं, फिर चाहे और लोग उसे उलटा ही क्यो न समझते हो। परन्तु इन बातो मे भी स्वाभाविकता से दूर न जाना चाहिए। क्योकि स्वाभाविकता अर्थात् 'नेचुरल' (natural) उक्तियाँ ही सुनने वाले के हृदय पर असर कर सकती हैं, अस्वाभाविक नहीं। असलियत को लिए हुए कवि स्वतन्त्रता-पूर्वक जो चाहे कह सकता है; असल बात को एक नए साँचे में ढालकर कुछ दूर तक इधर-उधर भी उड़ान भर सकता है; पर असलियत के लगाव को वह नही छोड़ता। असलियत को हाथ से जाने देना मानो कविता को प्रायः निर्जीव कर डालना है। शब्द और अर्थ दोनो ही के सम्बन्ध मे उसे स्वाभाविकता का अनुधावन करना चाहिए। जिस बात के कहने में लोग स्वाभाविक रीति पर जैसे और जिस क्रम से शब्द-प्रयोग करते है वैसे ही कवि को भी करना चाहिए। कविता में उसे कोई बात ऐसी न कहनी चाहिए जो दुनियाँ मे न होती हो। जो बाते हमेशा हुआ करती है, अथवा जिन बातो का होना सम्भव है, वही स्वाभाविक है। अर्थ की स्वाभाविकता से मतलब ऐसी ही बातो से है। हम इन बातों को उदाहरण देकर अधिक स्पष्ट कर देते, पर लेख बढ़ जाने के डर से वैसा नहीं करते।

जोश से यह मतलब है कि कवि जो कुछ कहे इस तरह कहे मानो उसके प्रयुक्त शब्द आप ही आप उसके मुँह से निकल गये है। उनसे बनावट न ज़ाहिर हो। यह न मालूम हो कि कवि ने कोशिश करके ये बाते कही हैं; किन्तु यह मालूम हो कि उसके हृद्गत भावो ने कविता के रूप मे अपने को प्रकट कराने के लिए उसे विवश किया है। जो कवि है उसमें जोश स्वाभाविक होता है। वर्ण्य वस्तु को देख कर किसी अदृश्य-शक्ति की प्रेरणा

से, वह उस पर कविता करने के लिए विवश-सा होता जाता है। उसमें एक अलौकिक शक्ति पैदा हो जाती है। इसी शक्तिके बल से वह सजीव ही नहीं, निर्जीव चीजों तक का वर्णन ऐसे प्रभावोत्पादक ढंग से करता है कि यदि उन चीजो में बोलने की शक्ति होती तो खुद वे भी इससे अच्छा वर्णन न कर सकती। जोश से यह भी मतलब नहीं कि कविता के शब्द खूब जोरदार और जोशीले हो। सम्भव है, शब्द जोरदार न हो, पर जोश उनमे छिपा हुआ हो। धीमे शब्दो मे भी जोश रह सकता है। और पढ़ने या सुनने वाले के हृदय पर चोट कर सकता है। परन्तु ऐसे शब्दों का प्रयोग करना ऐसे वैसे कवि का काम नही। जो लोग मोटी छुरी से तेज तलवार का काम लेना चाहते है, वही धीमे शब्दो में जोश भर सकते है।

सादगी, असलियत और जोश यदि ये तीनो गुण कविता मे हों तो कहना ही क्या है। परन्तु बहुधा अच्छी कविता में भी इन में से एक-आध गुण की कमी पाई जाती है। कभी-कभी देखा जाता है कि कविता में केवल जोश रहता है, सादगी और असलियत नहीं। कभी कभी सादगी और जोश पाये जाते हैं। असलियत नहीं। परन्तु विना असलियत के जोश का होना बहुत कठिन है। अतएव कवि को असलियत का सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए।

अच्छी कविता की सबसे बड़ी परीक्षा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठे कि सच कहा। वही कवि सच्चे कवि हैं जिनकी कविता सुन कर लोगो के मुँह से सहसा यह उक्ति निकलती है। ऐसे कवि धन्य है, और जिस देश मे ऐसे कवि पैदा होते हैं वह देश भी धन्य है। ऐसे कवियो की कविता चिरकाल तक जीवित रहती है।

४— कविता

बम्बई से मराठी भाषा मे, 'बालबोध' नामक एक छोटी-सी मासिक पुस्तक निकलती है। उसकी बाइसवीं जिल्द के पाँचवे अङ्क मे कविता-विषयक एक बहुत ही सरल और हृदयङ्गम लेख निकला है। उसका भावार्थ हम यहाँ पर देते है।

हँसना, रोना, क्रोध करना और विस्मित होना आदि व्यापार मनुष्यो में आप ही आप उत्पन्न होते हैं। उन व्यापारो के लिये जो सामग्री दरकार होती है उस सामग्रीको यथा समय प्राप्त होते ही वे व्यापार आपही आप आविर्भूत होजाते है। इसके लिए और कोई प्रयत्न नही करना पड़ता। कविता का भी प्रकार ऐसा ही है। अन्तःकरण की वृत्तियो के चित्रका नाम कविता है। नाना प्रकार के विकारो के योग से उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन मे नहीं समाते तब वे आप ही आप मुख के मार्ग से बाहर निकलने लगते है, अर्थात् मनोभाव शब्दो का स्वरूप धारण करते है। वही कविता है। चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक। शब्दात्मक मनोभाव अपनी शक्ति के अनुसार सुनने वाले पर अपना प्रभाव जमाते हैं। कथा, पुराण अथवा संकीर्तन आदि के समय भक्ति-भाव-पूर्ण पदो को सुनकर कोई-कोई प्रेमी आनन्द से लीन हो जाते है। उनकी आंखो से आंसुओंकी धारा बहने लगती है, यहां तक कि अपने को भूल जाते हैं। परन्तु वहीं पर उनके पास ही बैठे हुए कोई-कोई महात्मा, निकटस्थ नटखट लड़को की शरारत

देख कर हँसते रहते हैं, किंवा ऊँघा करते हैं। इसका यह कारण है कि उन पदो से भरे हुए भक्तिरस का स्वीकार अथवा उपभोग करने का सामर्थ्य उनमे नही होता। यह कोई आश्चर्य की बात नही। खून के समान भारी घटनाये जिस जगह हो जाती है उस जगह सब समझदार मनुष्य घबरा उठते है, परन्तु तीन-चार वर्ष के छोटे-छोटे लडके वही आनन्द से खेला करते हैं। उन पर उस घटना का कुछ असर नही होता। अज्ञानता के कारण खून के समान भयानक घटनाओ की भयङ्करता का विचार ही जब उन लड़को के मन मे नही आता, तब उनको उस विषय में भय कैसे मालूम हो सकता है?

कवियो का यह काम है कि वे जिस पात्र अथवा जिस वस्तु का वर्णन करते है उसका रस अपने अन्तःकरण में लेकर उसे ऐसा शब्द-स्वरूप दे देते हैं कि उन शब्दो को सुनने से वह रस सुनने वालों के हृदय मे जागृत हो उठता है। ऐसा होना बहुत कठिन है। सच तो यह है कि काव्य रचना में सब से बड़ी कठिनता जो है वह यही है। रामचन्द्र और सीता को हुए कई युग हुए। तुलसीदास को भी आज कई सौ वर्ष हुए। परन्तु उनके काव्य मे किसी-किसी स्थान पर इतना रस भरा हुआ है कि उस रस के प्रवाह में पड कर वहे बिना सहृदय मनुष्य कदापि नहीं बच सकते। रामचन्द्र के वन-गमन-समय सीता कहती हैं—

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक-समान॥

मातु पिता भागिनी प्रिय भाई।
प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सुजन सहाई।
सुठि सुन्दर सुशील सुखदाई॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते ।
पिय-बिनु तियहि तरणि ते ताते ॥
तनु धन धाम धरणि पुर राजू ।
पति विहीन सब शोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषण भारू ।
यम-यातना सरिस संसारू ॥
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं ।
मो कहं सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी ।
तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे ।
शरद्-विमल-बिधु-बदन-निहारे ॥

खग मृग परिजन नगर बन, बलकल बसन दुकूल ।
नाथ साथ सुर-सदन सम, पर्णशाल सुखमूल ॥

वनदेवी वनदेव उदारा ।
करिहैं सासु ससुर सम प्यारा ॥
कुश-किशलय साथरी सुहाई ।
प्रभु संग मञ्जु मनोज तुराई ॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू ।
अवध सहस सुख सरिस पहारू ॥
क्षण-क्षण प्रभु-पद-कमल विलोकी ।
रहि हौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
वन दुख नाथ कहेउ बहुतेरे ।
भय विषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-वियोग लवलेश समाना ।
सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥

असं जिय जान सुजान-शिरोमनि।
लेइय संग मोहि छाँड़िय जनि ॥
विनती बहुत करौ का स्वामी।
करुणामय उर अन्तरयामी ॥
राखिय अवध जो अवधि लगि, रहित जानिए प्रान ॥
दीनवन्धु सुन्दर सुखद, शील—सनेह—निधान ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी।
क्षण—क्षण चरण—सरोज निहारी ॥
सवहि भाँति प्रिय-सेवा करिहौ।
मारग-जनित सकल श्रम हरिहौ ॥
पाँव पखारि वैठि तरु छाहीं।
करिहौ वायु मुदित मन माही ॥
श्रमकण सहित श्याम तनु देखे।
कहं दुख समय प्राणपति पेखे ॥
सम महि तृण-तरु-पल्लव डासी।
पॉय पलोटिहि सव निशि दासी ॥
वार वार मृदु मूरति जोही।
लागिहि ताति वयारि न मोंही ॥
को प्रभु संग मोहि चितवनि हारा।
सिंह वधुहि जिमि शशक सियारा ॥
मै सुकुमारि नाथ वन—योगू।
तुमहि उचित तप मो कहं भोगू ॥
ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान।
तो प्रभु विपम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान ॥
अस कहि सीय विकल भई भारी।
बचन वियोग न सकी संभारी ॥

यह पढ़ते अथवा सुनते समय सुनने वाले के हृदय मे सीता की धर्मनिष्ठा और पतिपरायणता-विषयक भाव थोडा-बहुत उद्दीप्त या जाग्रत हुए बिना कभी नही रह सकता।

एक और उदाहरण लीजिए। पण्डित श्रीधर पाठक द्वारा अनुवादित "एकान्तवासी योगी" मे वियोगिनी पथिक-वेश-धारिणी अञ्जलेना अपने प्रियतम एडविन से उसी के विषय में इस प्रकार कहती है—

पहुँचा उसे खेद इससे अति, हुआ दुखित अत्यन्त उदास,
तज दी अपने मन मे उसने, मेरे मिलने की सब आस।
मै यह दशा देखने पर भी, ऐसी हुई कठोर।
करने लगी अधिक रूखापन, दिन दिन उसकी ओर॥
होकर निपट निराश अन्त को, चला गया वह बेचारा;
अपने उस अनुचित घमंड का फल मैने पाया सारा।
एकाकी में जाकर उसने, तोड़ जगत से नेह;
धोकर हाथ प्रीति मेरी से, त्याग दिया निज देह॥
किन्तु प्रेमनिधि, प्राणनाथ को भूल नही मै जाऊगी;
प्राण दान के द्वारा उसका ऋण मै आप चुकाऊंगी।
उस एकान्त ठौर को मै, अब ढूंढू हू दिन रैन।
दुख की आग बुझाय जहाँ पर दूं इस तन को चैन॥
जाकर वहाँ जगत को मैं भी, उसी भाँति विसराऊंगी,
देह गेह को देय तिलाञ्जलि, प्रिय से प्रीति निभाऊंगी।
मेरे लिए एडविन ने ज्यो, किया प्रीति का नेम;
त्योही मै भी शीघ्र करूंगी, परिचित अपना प्रेम॥

इसमे अञ्जलेना के पवित्र प्रेम और उसकी भूल के पश्चात्ताप-सम्बन्धी रस को कवि ने अपने हृदय मे लेकर शब्दो के द्वारा बाहर बहाया है। वह रस-प्रभाव सुनने वालो के अन्तःकरण में प्रवेश करके उपरति उत्पन्न करता है जिसके कारण हृदय

गद्‌गद् हो उठता है और किसी-किसी के आँसू तक निकलने लगते है। इसका नाम कविता-शक्ति है। ऐसी ही उक्तियो को कविता कहते है।

एक तत्वज्ञानी ने तो यहाँ तक कहा है कि रस-परिपक्वता ही कविता है। उसे मुख से कहने की आवश्यकता नहीं और कागज पर लिखने की आवश्यकता नहीं। यदि नट रङ्ग-भूमि में उपस्थित होकर, अपना मुँह ऊपर की ओर उठाकर और गर्दन हिलाकर, सभासदो को हँसा दे, तो उसके उस व्यापार को भी कविता कहना होगा। आजकल के विद्वानो का मत है कि अन्त:करण मे रस को उत्पन्न करके, और थोडी देर के लिए और बातो को भुला कर, उदार विचारो में मन को लीन कर देना ही कविता का सच्चा पर्यवसान है। कविता द्वारा यह भापित होना चाहिए कि जो बात हो गई है वह अभी हो रही है; और जो दूर है वह बहुत निकट दिखलाई देती है।

एक पण्डित का मत है कि कविता एक भ्रम है; परन्तु वह सुखदायक है। उसका अच्छी तरह उपभोग लेने के लिए थोडी देर तक अपनी सज्ञानता भूल जानी चाहिए। जो कुछ सीखा है उसका भी विस्मरण कर डालना चाहिए, और कुछ काल के लिए बालक बन जाना चाहिए। कमल के समान आँख नहीं होती; कोकिला का-सा कण्ठ किसी का नही होता, जो कुछ इसमे लिखा है, झूँठ है—इस प्रकार की बाते मन मे आते ही कविता का सारा रस जाता रहता है। कविता मे जो कुछ कहा गया है उसे ईश्वर वाक्य मान कर उसका रस लेना चाहिए।

आज कल के इतिहास-वेत्ताओ का कथन है कि देश मे जैसे-जैसे अधिक सुधार होता है और जैसे-जैसे विद्या-बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-ही-वैसे कविता-शक्ति भी कम होती जाती है। अब पहिले के ऐसे अच्छे कवि नहीं होते। यह इस बात का प्रमाण

है। यह बहुत ठीक है कि ज्यों-ज्यों हम प्राचीन काल की ओर देखते हैं त्यों-त्यों कविता विशेष रसाल दिखाई देती है। प्राचीन कवियों का सारा ध्यान अर्थ की ओर रहता था; भाषा की ओर बहुत ही कम रहता था। इसीलिए उनकी कविता मे उनका हृद्-गत-भाव बहुत ही अच्छी तरह से ग्रथित हो जाता था। परन्तु उनके अनन्तर होने वाले कवियो मे प्रबन्ध, शब्द-रचना और अलङ्कार आदिको की ओर ध्यान अधिक जाने से कविता मे अर्थ-सम्बन्धी हीनता आ गई है। एक बात और भी है। कविता के लिये एक प्रकार की भावुकता, एक प्रकार की सात्विकता और एक प्रकार का भोलापन दरकार होता है। वह समय के परिवर्तन से प्रतिदिन कम हो जाता है, इसीलिए पहले की जैसी कविता अब नहीं होती। और प्राचीन कवियो की कविता के सरस होने का एक कारण यह भी है कि किसी प्रकार की आशा के वशीभूत होकर वे कविता न करते थे। सत्कृत्य द्वारा कालक्षेप करने, अथवा परमेश्वर को भक्ति-द्वारा प्रसन्न करने ही के लिए वे प्राय: कविता करते थे। यह बात अब बहुत कम पाई जाती है। कविता मे हीनता आने का यह भी एक कारण है।

कविता से विश्रान्ति मिलती है। वह एक प्रकार का विश्राम स्थान है। उससे मनोमालिन्य दूर होता है और थकावट कम हो जाती है। चक्की पीसने के समय स्त्रियाँ, काम करने में मजदूर आदि, परिश्रम कम होने के लिये, गीत गाते है। जैसे मनुष्यो के लिए गाने की जरूरत है, वैसे ही देश के लिए कविता की जरूरत है। प्रति दिन नये-नये गीत बनते है और सब कही गाये जाते है। इसी नियमानुसार देश मे समय-समय पर नई-नई कविताएँ हुआ करती है। यह स्वाभाविक किंवा नैसर्गिक योजना है।

५—नायिका भेद।

औपन्यासिक पुस्तको के लिए केवल काशी ही और तान्त्रिक पुस्तको के लिये केवल मुरादाबाद ही, इस समय प्रसिद्ध हो रहे है। परन्तु नायिका-भेद और नख-सिख वर्णन के लिए यह देश का देश ही, किसी समय प्रसिद्ध था। देश से हमारा अभिप्राय उन प्रान्तो से है जहाँ हिन्दी बोली जाती है और जहाँ हिन्दी ही मे कवियो की कविता-स्फूर्ति का प्रकाश होता है। राजाश्रय मिलने की देरी, राजाजी को सब प्रकार की नायिकाओ के रसास्वादन का आनन्द चखाने के लिए कविजी को देरी नहीं। १० वर्ष की अज्ञात-यौवना से लेकर ५० वर्ष की प्रौढ़ा तक के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बतला कर और उनके हाव,-भाव, विलास आदि की दिनचर्या वर्णन करके ही कविजन सन्तोष नही करते थे। दुराचार मे सुकरता होने के लिए दूती कैसी होनी चाहिए, मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादि मे से इस काम के लिए कौन सब से अधिक प्रवीण होती है, इन बातो का भी वे निर्णय करते थे। नायक के सहायक विट और चेटक आदि का भी वर्णन करने से वे नहीं चूकते थे। इस प्रकार की पुस्तको अथवा कविताओ का बनाना अभी बन्द नहीं, वे बराबर बनती जाती है। तथापि पहिले बहुत बनती थी इसीलिए हमने भूतकाल का प्रयोग किया है।

सब नायिकाओं में नवोढ़ा अधिक भली होने के कारण किसी ने अभी कुछ ही वर्ष हुए, एक "नवोढ़ादर्श" नाम की पुस्तक, अकेले नवोढा ही नायिका की महिमा से आद्योपान्त भर कर, प्रकाशित की है। समस्यापूर्ति करने वाले कवि-समाजो और कवि मण्डलों का तो नायिका भेद जीवन-सर्वस्व हो रहा है सुनते

है, "सुकवि-सरोज-विकास" में भी नायका भेद ही है। नवोढ़ाओ और विश्रब्ध नवोढ़ाओ ही की कृपा से हमारी भाषा की कविता-लता सूखने नही पाई ! कविजन अब तक उसे अपने काव्य-रस से बराबर सींच रहे है और मुग्धमति युवक उसकी शीतल छाया मे शयन करके विषयाकृष्ट हो रहे है।

इस निबन्ध का नाम "नायिकाभेद" पढ़कर नायिका-भेद के भक्तो की यदि यह आशा हुई हो कि इसमें नवोढ़ा के सुरतांत और प्रौढ़ा के पुरुषायित-सम्बन्ध में कोई नवीन युक्ति उन्हे सुनने को मिलेगी तो उनको अवश्य हताश होना पड़ेगा। परन्तु हताश क्यों होना पड़ेगा ? आजतक नायिकाओका क्या कुछ कम वर्णन हुआ है ? इस विषय मे, हिन्दी साहित्य मे, जो कुछ विद्यमान है उससे भी यदि उनकी काव्य रस पीने की तृषा शान्त न हो तो हम यही कहेंगे कि उनके उदर मे बड़वानल ने निवास किया है।

ऋषियो के बनाये हुए संस्कृत-ग्रथो तक मे नायिकाओं के भेद कहे गये है परन्तु पद्माकर और मतिराम आदि के ग्रंथो का जैसा विस्तार वहाँ नही है नायकाओ की भेद भक्ति हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से चली आई है। कालिदास के काव्यो में भी नायिकाओ के नाम पाये जाते हैं।

निद्रावशेन भवताप्यनत्र वेक्षमाणा
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ॥
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्र. ॥

रघुवंश, सर्ग ५।

यहाँ खण्डिता नायिका का नाम आया है। संस्कृत में ऐसी अनेक पुस्तके है जिनमे नायिकाओ की विभाग परम्परा और उनके लक्षणो का विवरण है। तथापि हिन्दी पुस्तको की जैसी प्रचुरता संस्कृत मे नही है। दशरूपक और साहित्य दर्पण इत्यादि

में प्रसङ्ग वश इस विषय का विचार हुआ है, परन्तु वे विचारे गौण है, मुख्य नहीं। जिसमे केवल नायिकाओ का ही वर्णन हो ऐसी पुस्तक संस्कृत मे एक "रस-मञ्जरी" ही हमारे देखने मे आई है। मिथिला के रहने वाले पण्डित भानुदत्त ने उसे बनाया है। भानुदत्त के अनुसार नायिकाओ के ११५२ भेद हो सकते है इस पुस्तक मे उन्होने नायिकाओ का यद्यपि बहुत विस्तृत वर्णन किया है तथापि उनका वर्णन संस्कृत मे होने के कारण इतना उद्वेग जनक और हानिकारक नही जिना सुरतारम्भ, सुरतान्त और "विपरीत" मे विलग्न होने वाले हमारे हिन्दी कवियाका है। इस विषय मे हिन्दी-पुस्तको का प्राचुर्य देखकर यही कहना पड़ता है कि इस अल्पोपयोगी नायिका-भेद मे सस्कृत-कवियों की अपेक्षा हमारी भाषा के कवियो और भाषा की कविताओ के प्रेमियो की सविशेष रुचि रहती आई है। नगरो की बात जाने दीजिये, छोटे-छोटे गांवो तक मे साठ-साठ वर्ष के बुड्ढो को भी नायिका-भेद की चर्चा करते और ज्ञात-यौवना और अज्ञात यौवना के अन्तर के तारतम्य पर वक्तृता देते हमने अपनी आंखो देखा है।

निश्चयात्मकता से हम यह नही कह सकते कि नायिका-भेद की उत्पत्ति कब से हुई और क्यो हुई। वात्सायन मुनि-कृत "कामसूत्र" बहुत प्राचीन ग्रंथ है। उसमें नायिका और नायिकाओ के सामान्य भेद कहे गये हैं। ये भेद वैसे ही है जैसे इस प्रकार की पुस्तको मे हुआ करते है। वह आडम्बर और वह अश्लीलता जो आजकल के नायिका-भेद मे पाया जाता है, वहाँ बिलकुल नही। जान पड़ता है, इसी प्रकार के ग्रन्थ नायिका-भेद की उत्पत्ति के कारण है। सम्भवतः इन्हीं को देखकर नायिकाओ के पक्षपातियो ने इसे पृथक् विषय निश्चित करके पृथक् पृथक् अनेक ग्रंथ रच डाले और सकडो, नही हजारो, भेद उत्पन्न करके सब रसो के राजा का राज्य-विस्तार बहुत ही विशेष बढ़ा

दिया। नायिकाऐं ही शृंगार-रस की अवलम्बन हैं, और शृंगार रस ही सब रसो का राजा है। राजा का जीवन ही जब इन नायिकाओं पर अवलम्बित है तब कहिए क्यों हमारे पुराने साहित्य में इनकी इतनी प्रतिष्ठा न हो? इनकी कीर्ति का कीर्तन करके क्यों कविजन अपनी वाणी को सफल न करे? और इन्ही की बदौलत नाना प्रकार के पुरस्कार पाकर क्यो न वे अपने को कृत्यकृत्य मानें?

कृष्ण, राधा, गोपिका, वृन्दावन, यमुना, कुञ्जकुटीर आदि ने नायिका-भेद के वर्णन मे विशेष सहायता पहुँचाई है. परन्तु यदि कोई यह कहे कि यह भेद-वर्णन राधाकृष्ण के उपासना—तत्व से सम्बन्ध रखता है तो उसका कथन कदापि मान्य नहीं होसकता। नायिकाओ मे "सामान्य" एक ऐसा भेद है जिससे कृष्ण का कोई सम्पर्क नहीं, और नायिका-भेद के आचार्यों ने कृष्ण की नायिकाओ के भेद नही किये, किन्तु सामान्य रीति से नायिका-मात्र की भेद-परम्परा वतलाई है अतएव कृष्ण के उपासको के लिए इस विषय पर कृष्ण का सम्बन्ध न बतलाना ही अच्छा है।

जहां तक हम देखते हैं स्त्रियो के भेद-वर्णन से कोई लाभ नहीं, हानि अवश्य है; और बहुत भारी हानि है। फिर हम नहीं जानते, क्या समझकर लोग इस विपय के इतने पीछे पड़े हुए है। आश्चर्य इस बात का है कि इस भेद-भक्ति के प्रतिकूल आज तक किसी ने चकार तक मुख से नहीं निकाला। प्रतिकूल कहना तो दूर रहा, नायिकाओ की नई-नई चेष्टाओ का वर्णन करने वालों को प्रोत्साहन और पुरस्कार तक दिया गया है। इस प्रोत्साहन का फल यह हुआ कि नवोढ़ा आदि नायिकाओ के सम्बन्ध में कवियो को अनन्त स्वप्न देखने पड़े है। हिन्दी के समान बॅगला, मराठी, गुजराती भाषाएँ भी संस्कृत से निकली है, परन्तु इन

भाषाओं में नायिकायो का कही भी उतना साम्राज्य नही जितना हिन्दी मे है। हिन्दी मे इनका आधिक्य क्यो? जान पड़ता है, और कही भी ठहरने के लिए सुखदाई स्थान न पाकर बेचारे नायिका-भेद ने विवश होकर, हिन्दी का आश्रय लिया है। इस विस्तृत विश्व मे ईश्वर ने इतने प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, वन, निर्झर, नदी, तड़ाग आदि निर्माण किये है कि यदि सैकड़ों कालिदास उत्पन्न होकर अनन्त काल तक उन सबका वर्णन करते रहें तो भी उनका अन्त न हो। फिर हम नहीं जानते और विषयों का छोड़कर नायिका-भेद सदृश अनुचित वर्णन क्यों करना चाहिए? इस प्रकार की कविता करना वाणी की विगर्हणा है।

अब देखिए, इस प्रकार की पुस्तकों मे लिखा क्या रहता है। लिखा रहता है परकीया (परस्त्री) और वेश्याओ की चेष्टा और उनके कलुषित कृत्यो के लक्षण और उदाहरण! परकीया के अन्तर्गत अविवाहित कन्याओं के पापाचरण की कथा!! पुरुषमात्र में पतिबुद्धि रखने वाली कुलटा स्त्रियों के निर्लज्ज और निरर्गल प्रलाप!!! और भी अनेक बाते रहती हैं। विरह-निवेदन करने अथवा परस्पर मेल करा देने के लिये दूतों और दूतियों की योजना का वर्णन रहता है, वेश्याओ को बाजार में बिठला कर उनके द्वारा हजारो के हृदय-हरण किये जाने की कथा रहती है। परकीयाओ के द्वारा, कबूतर के बच्चे की जैसी कूजित के मिष, पुरुषो में आह्वान की कहानी रहती है। कहीं कोई नायिका अँधेरे में यमुना के किनारे दौडी जा रही है; कहीं कोई चाँदनी में चाँदनी ही के रङ्ग की साड़ी पहनकर घर से निकल, किसी लता-मण्डप में बैठी हुई किसी की मार्ग प्रतीक्षा कर रही है; कहीं कोई अपनी सास को आँधी और अपने पति को विदेश गया बतलाकर द्वार पर आये हुये पथिक को रात भर विश्राम करने के लिए प्रार्थना

कर रही है; कही कोई अपने प्रेम-पात्र के पास गई हुई सखी के लौटने मे बिलम्ब होने से कातर होकर आँसुओं की धारा से आँखो का काजल बहा रहा रही है!!!यही बाते विलक्षण उक्तियों के द्वारा, इस प्रकार की पुस्तकोमे विस्तार पूर्वक लिखी गई हैं। सदाचरण का सत्यानाश करने के लिये क्या इससे भी बढ़ कर कोई युक्ति हो सकती है ? युवको को कुपथ पर ले जाने के लिये क्या इससे भी अधिक बलवती और कोई आकर्षण शक्ति हो सकती है ? हमारे हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार की पुस्तको का आधिक्य होना हानिकारक है, समाज के चरित्र की दुर्बलता का दिव्य-चिन्ह है। हमारी स्वल्प बुद्धिके अनुसार इस प्रकारकी पुस्तको का बनाना शीघ्रही- बन्द हो जाना चाहिये, और यही नहीं, किन्तु आजतक ऐसी-ऐसी जितनी इस विषय की दूषित पुस्तके बनी है उनका वितरण होना भी बन्द हो जाना चाहिए। इन पुस्तकों के बिना साहित्यको कोई हानि नहीं पहुँचेगी; उलटा लाभ होगा। इसके न होनेसे भी समाज का कल्याण है। इनके न होनेसे ही नववयस्क मुग्धमति युवा-जन का कल्याण है। इनके न होनेसे ही इनके बनाने और बेचने वालो का कल्याण है।

जिस प्रकार नायिकाओंके अनेक भेद कहे गये है और भेदानुसार उनकी अनेक चेष्टाएँ वर्णन की गई है, उसी प्रकार पुरुष के भी भेद और चेष्टा-वैलक्षण्य का वर्णन किया जा सकता है। जब नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका होती है तब नवोढ़ और विश्रब्ध-नवोढ़ नायक भी हो सकते है। वासकसज्जा, विप्रलब्धा और कलहान्तरिता नायिकाके समान वासकसज्ज, विप्रलब्ध और कलहान्तरित नायक होने में क्या आपत्ति हो सकती है ? कोई नही। क्या स्त्री ही अज्ञात-यौवना होती है ? पुरुष अज्ञात-यौवन नहीं होता ? "रसमजरी" वाले कहते हैं कि स्वभाव

भेद से पुरुषों के चार ही भेद होते है—अर्थात् अनुकूल, दक्षिण, धृष्ठ और शठ, परन्तु अवस्था भेद से स्त्रियोंके अनेक भेद होते हैं। यह बात हमारी समझ में नही आती। मनोविकार दोनो मे प्रायः एकही से होते है। जिस प्रकार के लक्षण और उदाहरण नायिकाओं के विपय मे लिखे गये हैं, उसी प्रकार के लक्षण और उदाहरण प्राय. पुरुपो के विषयमे भी लिखे जा सकते हैं। परन्तु हमारी भापा के कवियो ने नायको के ऊपर इस प्रकारकी पुस्तकें नही लिखीं। इसलिये हम उनको अनेक धन्यवाद देते है। यदि कही वे इस ओर भी अपनी कवित्व-शक्ति की योजना करते, तो हमारा कविता-साहित्य और भी अधिक चौपट हो जाता।

६—हंस सन्देश

संस्कृत मे सहृदयानन्द नामक एक बहुत ही सरस काव्य है। उसके कर्त्ता कविकी जबानी एक पुरानी कथा सुनिए।

निषध देशका राजा नल, एकबार, वनविहार को निकला। नगरसे कुछ दूर जाने पर, एक उपवन मे, उसने एक मनोहर तालाब देखा। उसमें कमल खूब खिल रहे थे। मछलियां खेल रही थीं और अनेक प्रकार के जल पक्षी कलोल कर रहे थे। वहाँ पर उसने एक बहुत ही मनोहर

हंस देखा। राजा को वह इतना पसन्द आया कि उसने उसे सजीव पकड़ना चाहा। इसलिये उसने अपने निषङ्ग से एक सम्मोहन शर, उसपर चलाने के लिये, निकाला। शर को उसने शरासन पर रक्खा ही था कि उसने एक अलक्षित वाणी सुनी। उस वाणी का मर्म यह था कि—

"हे नरेश, इस पर बाण मत छोड़। यह तेरा अभीष्ट सिद्ध करेगा। तेरे ही रूप-गुण-सम्पदा के अनुरूप यह तुझे एक त्रिभुवन मोहनी राज-कन्या प्राप्त करा देगा। उसे तू अपनी महिषी बनाना।"

यह सुनकर उस आकर्णाकृष्ट बाणको राजा ने उतार लिया।

नल की इस दयालुता पर वह हंस बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपना स्थान छोड़कर नल के कुछ निकट आया और बोला—"हे निषधनाथ, ईश्वर तेरा कल्याण करे। तूने मुझ पर दया दिखाई है। इसके बदले में मैं भी तेरी कुछ सेवा करना चाहता हूं। तू मुझे साधारण पक्षी मत समझ। मैं ब्रह्मा के रथ को खींचता हूं, इन्द्र के सिहासन के पास बैठता हूं, जयन्त इत्यादि देव-बालकों के साथ खेलता हूँ, औरमन्दाकिनी के किनारे विहार किया करता हूँ, तूने अपने नृपोचित गुणों से इस भूमण्डल को स्वर्गसे भी अधिक सुषमाशाली कर रक्खा है इसलिये कभी-कभी मैं यहां भी घूमने आजाता हूं। मैं चाहता हूंकि जैसे और देवता मुझसे सख्य-भाव रखते हैं वैसे ही तू भी रख।"

नल ने इस बात को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। आज से तू मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा हुआ, यह कह कर राजा ने बड़े ही प्रेम से उस पक्षी के शरीर पर अपना कर-कमल फेरा। कुछ देर तक वे दोनो परस्पर प्रेमालाप करते रहे। अनन्तर नल के लिये एक कन्या-रत्न ढूढ़ने के निमित्त, हंस ने, राजा की

अनुमति पाकर, वहाँ से प्रस्थान किया। राजा भी नगर की तरफ लौटा, परन्तु शरीर मात्र से, मन से नही। मन उसका हंस ही के साथ उड़ गया था।

हंस के वियोग में नल को बड़ा दुःख हुआ। दिन-रात वह उसीका चिन्तन करने लगा। किसी काममें उसका दिल न लगने लगा। इस समय वसन्त का आविर्भाव हुआ। इससे उसे और भी अधिक पीड़ा हुई। बसन्त विरहियो का वैरी है। अतएव दिल बहलाने के लिये, अपने उद्यान में, एक बावली के किनारे, राजा जा बैठा। वहाँ वह सैकड़ों तरह की भावनाएँ कर रहा था कि सहसा उसका परिचित वही हंस वहाँ आता हुआ उसे देख पड़ा। राजा को परमानन्द हुआ। उसे खोई हुई निधि-सी मिली। नल ने उस दिव्य हंस को अपनी गोद में बिठाला। कुशल समाचार पूछने के अनन्तर राजा ने उसे अपने हाथ से मृणालांकुर खिलाये रास्ते की उसकी सारी थकावट जाती रही। नल ने हंस से सुना कि स्वर्गलोक में जितने शहर, गाँव और कस्बे हैं, सबमें उसके यशोगीत गाये जाते हैं। गन्धर्व नारियो किन्नरियों और सुराङ्गनाओं को अब और किसी विषय के गीत अच्छे नहीं लगते। औरों को लोग सुनते भी नहीं। इससे गायक और गायिकाएँ बहुधा यहाँ आती है, उसके नये नये चरित्र सुनती हैं, और उन्हीं के आधार पर श्लोक, गजल और गीतों की वे रचना करती हैं।

मामूली बातें हो चुकने पर हंस ने मतलब की बात शुरू कीं, जिसे सुननेके लिये नल घबरा रहा था। उसने कहा—मित्र, तेरे लिए एक अनन्य-साधारण कन्या ढूढ़ने मे मुझे बड़ी हैरानी, उठानी पड़ी। ऊपर जितने लोक हैं; सबकी खाक मैंने छान डाली। पर एकभी सर्वोत्तम रूपवती मुझे न देख पड़ी। तब मैंने

ठेठ अमरावती की राह ली। वहाँ पर भी मैंने एक-एक घर ढूँढ़ डाला। तिस पर भी मेरा काम न हुआ। मेरे चेहरे पर उदासी छा गई। मैं डरा, मुझे यह विश्वास होने लगा कि मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी। मैं अपना प्रण पालन न कर सकूँगा, मुझे तेरे लायक कोई कामिनी न मिलेगी। जब अमरावती ही में नहीं, तब उसके होने की और कहाँ सम्भावना हो सकती है? इसी सोच विचार में मेरे मिनट, घन्टे और दिन जाने लगे। एक दिन मेरा जी बहुत ऊबा। इसलिये मैं देवराजकी सभा मे गया। मैंने कहा चलो वही चलकर कुछ देर जी बहलावे।

वहाँ मैंने देखा कि सब देवता यथास्थान बैठे हैं। साहित्य-शास्त्री देवता, महाराजा अयोध्याके रसकुसुमाकर पर वाद-विवाद कर रहे हैं। कोई इस नायिका मे दोष निकाल रहा है, कोई उसमें। कोई कहता है, रूप नहीं अच्छा; कोई कहता है भाव नहीं अच्छा। इसी तरह लोग अपनी-अपनी हाँक रहे हैं। इस खींचा-तानी को देख कर सुरेन्द्र ने कामेश्वर शास्त्री की तरफ देखा। इन शास्त्री महाराज का जन्म सृष्टि के आदि का है। पर इतने बूढ़े हो जाने पर भी नायिकाओ के गुणदोष की पहचान मे आप अपना सानी नहीं रखते। यही समझ कर सुरेन्द्र महाराज ने आज्ञा दी कि शास्त्रीजी अब आप भी कुछ कहिए, आपकी राय में कौन रमणी सब से अधिक रूपवती है?

कामेश्वरजी ने सुरेश्वर की आज्ञा सिर पर रक्खी। अपनी पगड़ी के ढीले पेचो को उन्होने कड़ा किया। फिर उन्होंने वक्तृता आरम्भ की। आप बोले—

अमरराज, इनमे से एक भी नायिका मुझे अच्छी नही जँचती। सब मे कोई न कोई दोष है। मेरी गृहिणी को यह घमंड था कि मै बहुत ही रूपवती हूँ। इससे वह कभी-कभी मुझे

भी कुछ न समझती थी। एक बार उसका गर्व-गर्भित व्यवहार मुझे दुःसह हो उठा इसलिए मैंने उसके गर्व को दूर करना चाहा। मैं एक सर्वाङ्गसुन्दरी रमणी की खोज मे निकला। इसमें मैं बहुत दिन तक हैरान रहा। आखिर को मुझे कामयाबी हुई। विदर्भ-देश के राजा भीम की कन्या दमयन्ती को देख कर मैं स्तम्भित हो गया। वैसी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखी थी! उसका चित्र मे खींच लाया। उसे देख कर मेरी घरवाली की अकल ठिकाने आ गई। तब से उसका गर्व दूर हो गया और वह मुझे वक्त पर रोटी देने लगी।

एक घण्टे तक, साहित्याचार्य कामेश्वर शास्त्री ने दमयन्ती के रूप का वर्णन किया। उस समय सुरेन्द्र-सभा मे अनेक सुन्दरियाँ बैठी हुई थीं। दमयन्ती का नखशिख-वर्णन सुन कर उनकी अजीब हालत हुई। वे एक-दूसरे का मुँह ताकने लगीं। तिलोत्तमा का चेहरा काले तिल के समान काला पड़ गया। मदालसा का सौंदर्य-मद उतर गया। सुलोचना ने अपने लोचन बन्द कर लिए। सुमध्यमा सखियो के मध्य मे छिप गई। मेनका का मन मलिन हो गया। कलावती अपनी कलाओं को भूल गई। सुविभ्रमा का विभ्रम भ्रम मे पड गया। शशिप्रभा नि प्रभ हो गई और चित्र-लेखा चित्र के समान बैठी रह गई।

शास्त्रीजी की बात सुन कर मै बहुत खुश हुआ। मै वहाँ से फौरन ही उड़ा। कोई दो घण्टे मे विदर्भपुरी मे दाखिल हुआ। वहाँ मै दमयन्ती के प्राङ्गण मे पहुँचा। उस जगह एक हौज था। उसमे एक फव्वारा था। उसकी चोटी पर मै जा बैठा। कुछ देर मे मुझे वहाँ दमयन्ती देख पडी। उसके रूप को देख कर मैं अचरज मे पड़ गया। मित्र, इसके पहले मैंने वैसी सुन्दरी कहीं न देखी थी। रूप-वर्णन मे शास्त्रीजी की जड़ता का मुझे तब

अन्दाज हुआ। कहाँ दमयती का भुवन-मोहन रूप और कहाँ शास्त्रीजी का शुष्क वर्णन। दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर! आखिर बूढ़े ही तो ठहरे!

मैने देखा, दमयन्ती की दशा अच्छी नही। वह उदास है। इसलिए उसकी चिन्ता का कारण जानने की इच्छा से मै वहीं ठहर गया। उस हौज के पास दमयन्ती के कई क्रीड़ा-हंस भी थे। इन्हीं के साथ मैं भी इधर-उधर घूमने और दमयन्ती की चर्य्या अवलोकन करने लगा। मै बीच-बीच मे मनुष्य की बोली बोलने लगा। उसे सुन कर दमयन्ती को बड़ा कौतूहल हुआ। वह मेरी तरफ बार-बार देखने लगी। मैं यही चाहता था। इतने मे विघ्न हुआ। दमयन्ती को खेदवती देख, एक सखी उससे खेद का कारण पूछने लगी। वह बोली—

"सखी लवलीलता के समान तेरी गण्डस्थली पीली पड़ गई है। लाल कमल के समान अपने कोमल कर-पल्लव के बोझ से उसे तू क्यों तङ्ग कर रही है? देख, यह निष्करुण पिक अध-खिली कलियों वाली आम की इस पतली शाखा को पीड़ित कर रहा है। क्यों नहीं तू उसे अपनी करतालिका से उड़ा देती? सुगन्ध के लोलुप ये भ्रमर खिले हुए फूलो को छोड़ कर तेरी तरफ आते हैं, पर व्याकुल हो कर वे पीछे हट जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि सन्ताप से तेरा श्वास तप रहा है। तेरे कान में खोंसे हुए तमाल-दल को खींचने में जिसे तत्पर देख कौतूहल होता था, वह हरिण-शावक तुझे खिन्न-हृदय जान कर मुँह में रक्खे गये दर्भाङ्कुरो को भी नहीं खाता। करतल में रख कर जिसे तू अनेक प्रकार की सरस बाते सिखलाती थी, वह तेरा क्रीड़ा-शुक, तुझे चुप देख, ऐसा मूक हो रहा है जैसे अभी नया जङ्गल से पकड़ आया हो। अपने इस केलि-हंस को तो तू जरा देख।

उसकी सहचरी आगे चल कर बड़ी ही मधुर और रस-भरी वाणी से, उसे पुकार रही है। परन्तु वह उसके पास नहीं जाता। वह चाहता है कि तू अपने पाणि-पल्लव से मृणाल का एक टुकड़ा उसकी चोंच में रख दे। क्या बात है ? हैं, क्या कारण कि यह अतर्कित आई हुई पियराई, कनक-चम्पक के समान तेरी गौर कान्ति को बिगाड़ रही है ? एक तो तू स्वयं ही दुबली-पतली थी, तिस पर यह अधिक दुबलापन क्यों ?"

इस प्रकार सैकड़ों तरह की बातें दमयन्ती की सखी ने उससे पूछीं, परन्तु, उत्तर में, दमयन्ती के मुँह से एक भी शब्द न निकला। वह पववत् चुपचाप बैठी रही। हाँ, एक लम्बी उसाँस मात्र उसने ली। तब उसकी एक और सखी बोली। दमयन्ती के मौनावलम्बन और दुबलेपन का कारण वह समझ गई थी। उसने कहा—

"इसका पिता इसे एक योग्य वर को देना चाहता है। इसलिए उसने; कुछ समय हुआ, अनेक चतुर चित्रकारों को बुलाया। उनसे उसने हजारो रूप-गुण-सम्पन्न राजकुमारो के चित्र तैयार कराये। एक दिन वे चित्रफलक मेरी नजर मे पड़ गये। मुझ पर मूर्खता सवार हुई। मै उनको इसके पास उठा लाई। इसने बड़े ध्यान से उनमें से एक-एक को देखा। देखते-देखते एक त्रिलोकी-तिलक युवा पर यह मोहित हो गई। तभी से इसकी हालत खराब है। तभी से यह अथाह चिन्ता-सागर में गोते खाती जा रही है।

इसके शरीर के भीतर जलने के भय से इसकी श्वास-वायु इससे दूर भाग रही है। आँसुओं की धारा में डूब जाने के डर से नींद इसके नयनों के पास नही आती। उशीर का लेप लगाने से यह और भी अधिक सन्तप्त हो उठती है। कमलिनी-दलों के पखे को देख कर इसे क्रोध आता है। जिसने इसके हृदय मे प्रवेश

किया है, उसी सुभग का यह सतत स्मरण करती रहती है। इसका सन्ताप मुझे तो, इस तरह, दुर्निवार मालूम होता है। खिड़की की राह से चन्द्रमा को देखने मे इस चञ्चलाक्षी को पीड़ा होती है। इसलिए यह अपना मुँह नीचा कर लेती है। पर ऐसा करने से इसका मुंह इसके वक्ष-स्थल में प्रतिबिम्बित हुआ देख पड़ता है। उसे देख चन्द्रमा के धोखे यह बेतरह कॉप उठती है। एक तो स्वभाव ही से यह सुकुमार और दुबली थी, फिर मनोज ने इसे और भी दुर्बल कर दिया। यह देख कर इसके हाथ के कङ्कणों को यह सन्देह हुआ कि अब यह हमारा बोझ न सह सकेगी। इसलिए देखो, वे जमीन पर जा गिरे है। यह कुमुदिनी इस पापिष्ठा चाँदनी से अभी तक प्रीति रखती है। सखि, इसको किसी वस्तु से ढक दे, जिसमे इसे चन्द्र-किरणो का स्पर्श न हो। नही तो, कही, इसे भी मेरे समान ज्वर न आ जाय। इस तरह यह बार-बार कहा करती है। न इसे सघन वृक्षो की छाया से शीतल उद्यान मे आराम मिलता है, न चन्दन-चर्चित और मणि-मण्डित अट्टालिका में आराम मिलता है; और न चन्द्र-मरीचियों से धौत महल के भीतर ही आराम मिलता है।

इस प्रकार दमयन्ती की गुप्त चेष्टाओ का वर्णन करके उसकी सखियां उस समय के अनुकुल उपचार करने लगीं। उन्होंने कमलिनी-दलो की एक कोमल शय्या प्रस्तुत करके उस पर उसे लिटाया। पर बेचारी दमयन्ती को उस महा शीतल शय्या पर वैसा ही सन्ताप हुआ, जैसा कि मार्त्तण्ड की प्रचण्ड किरणो से उत्तप्त हुए गढ़े मे पड़ी हुई मछली को होता है। उसे बहुत ही व्याकुल देख उसकी सबसे प्यारी सखी ने ताजी मृणाल-लता को उसके कण्ठ पर रक्खा कि कुछ तो उसे ठंडक पहुँचे। परन्तु हुआ क्या ? उसके ताप की प्रचण्डता से वह मृणाल-लता नीलम के समान काली होगई !

इस प्रकार दुर्निवार ताप से तपी हुई उस बाला को देख मुझे दया आई। मै धीरे-धीरे उसके पास गया और अपने पंखों से उस पर हवा करने लगा। मुझे इस तरह अपनी सेवा करते देख उसने अपनी दृष्टि मेरी तरफ फेरी। तब, अवसर पाकर, मैंने उससे कहा—

"तरुणि, जिस तरुण का तू चिन्तन करती है वह धन्य है उसके पुण्य की सीमा नही। जो युवा तुझसे प्रेम-बन्धन करने की अभिलाषा रखते है उनको मैं त्रिभुवन मे सबसे बडा भाग्य-शाली समझता हूॅ। सुन्दरि, सुरेन्द्र के समान देवता भी तुझे पाने की कामना करते हैं। तब यदि, मनुष्यो मे तेरा प्रार्थित तरुण तुझे न मिले, तो बड़े आश्चर्य की बात है। तेरे स्मरणके कारण, मन्दार-मालाओ से अलंकृत मणि-मन्दिरो मे इन्द्राणी के साथ बात-चीत करना भी इन्द्र को अच्छा नहीं लगता। क्षीर-सागरके ठीक बीच में रहकर भी, और सैकड़ो नदियो के द्वारा चरण-स्पर्श किये जाने पर भी तेरे सोच से, वारिपति वरुण को ज्वर चढ़ रहा है। तेरे कारण पञ्चसर से पीडित किया गया कुबेर आंखे बन्द करके चन्द्रमौलि के पास से हटकर, उनकी सखियों के पास चला जाता है। चन्द्रचूड की चूड़ा के चन्द्रमा की किरणे उससे नहीं सही जाती। तेरे त्रैलोक्य-मोहक तनु को देखकर भगवान् अरविन्द-बन्धु (सूर्य) को रागान्ध रोग होगया है। इसी से पृथ्वीके चारो ओर वे दिन-रात गता-गत किया करते हैं गिरिजा को गिरीश के वाम भाग में बैठी हुई देखकर यदि तुझे स्पर्धा उत्पन्न हुई हो तो साफ-साफ मुझसे तू वैसा कहदे। मै तुझे बहुत जल्द उनके दाहिने भाग मे बिठला दूं। अधिक कहना सुनना मैं व्यर्थ समझता हूँ। यदि तू कहे तो मै तुझे लेकर दूसरी लक्ष्मी के समान, नारायण के अङ्क में अभी बिठला आऊं। मैंने तेरे सामने बहुत से देवताओं के नाम लिये। त्रिलोकी में

जितनी बिलासिनियां है, उनके लिये वे सभी दुर्लभ हैं। कृपा करके अब तू मुझे बतलादे कि उनमे से तू किसे अपने पाणिपीड़न से सबसे अधिक भाग्यवान् बनाना चाहती है। मेरी ये मीठी-मीठी बातें सुनकर तू मुझे कहीं पिजड़े के शुक के समान, वृथा बक-वादी मत समझना। मै ब्रह्मा का वैमानिक हूं। मेरे लिए दुनियां मे कोई वस्तु दुष्कर नही।"

यह सुनकर उस मृगाक्षी को मेरी बातों पर विश्वास आ गया और उसने उस फलक को, जिस पर तेरी तस्वीर थी बड़े प्रेम से अपनी छाती से लगाया। तुझमें, इस तरह अनुरक्त हुई उस बाला को देखकर मैंने अपना प्रयास सफल समझा। मैंने कहा—"यह वीर युवक मधु है; तू माधवी है। यह कुमुद वन्धु है तू कौमदी है। ऐसी अनुपमेय जोड़ी का सम्बन्ध इस तरह चिरकाल तक सुखकारक हो। इस तरह उसको विश्वास दिला-कर तेरे पास आने की इच्छा से ज्यो ही मैं उड़नेको हुआ त्योंही उसने अपने कम्बु-कण्ठ से उतार कर, यह हार मेरे गले में डाल दिया। चन्द्रमा की चन्द्रिका से भी अधिक निर्मल, तेरी प्रिया की दूसरी हृदय-वृत्ति के समान, यह मुक्तालता तेरे हृदय को आनन्दित करे।"

इस माला को नल ने बड़े आदर से लिया। उसको स्पर्श करते ही उसका शरीर कण्टकित होआया। उसे उस समय यह भावना हुई कि एक छेद होने के कारण इसको मेरी प्रियतमा के अङ्ग का स्पर्श हुआ। पर शायक के पञ्चशायकों से किये गये सैकड़ों छेदों को हृदय मे धारण करके भी मुझे अभी तक उसके दर्शन तक नही हुए। मैं बड़ा ही अभागा हूं। कुछ देर तक वह ऐसी ही ऐसी चिन्ताओं में निमग्न रहा। जब वह उस चिन्ता-समुद्र से उन्मज्जित हुआ तब, आनन्द से पुलकित होकर, अपने

निर्व्याज मित्र उस हंस को उसने हृदय से लगा लिया। मांगने से कल्पवृक्ष मांगी हुई चीज देता है और चिन्तामणि चिन्तन करने पर चिन्तित पदार्थ के पास पहुंचता है। परन्तु बिना प्रार्थना और चिन्तना ही के मुझे एक अलौकिक प्रियतमा-रत्न प्राप्त करने की चेष्टा करके तूने इन दोनों को नीचे कर दिया। इस प्रकार राजा नल पक्षी से कह ही रहा था कि सायंकाल का शङ्ख बजा और उसे सायन्तनी कृति के लिये उठकर महलों मे जाना पड़ा।
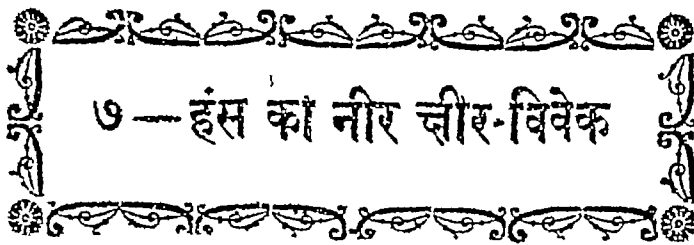
७—हंस का नीर-क्षीर-विवेक

संस्कृत-साहित्य मे हंस, पिक, भ्रमर और कमल की बड़ी धूम है। बिना इनके कवियों की कविता फीकी होजाती है। कोई पुराण, कोई काव्य, कोई नाटक ऐसा नहीं जिसमे इनका जिक्र न हो। इन सब मे कवियो ने एक न एक विशेषता भी रक्खी है। यथा—हंस, मिले हुए दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है, दूध पी लेता है और पानी छोड देता है। पिक अपने बच्चे कौओं के घोंसलों में रख आता है और बड़े होने तक उन्हीं से उनकी सेवा कराता है। भ्रमर, आम की मंजरी से अतिशय प्रेम रखता है, पर चम्पे के पास तक नहीं जाता। कमल चन्द्रमा से द्वेष रखता है, उसकी विद्यमानता मे वह कभी नहीं

खिलता; पर सूर्य का वह परम भक्त है। इनमें से दो एक बातें तो निसंदेह सही हैं; पर औरो के विषय में मतभेद हैं। उदाहरण के लिए हंस और उसके नीर-क्षीर-विषयक विवेक को लीजिए।

संस्कृत काव्यो मे जगह-जगह पर यह लिखा हुआ है कि हंस मे यह शक्ति है कि वह दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। पर दूध और पानी को अलग-अलग करते उसे किसी ने नहीं देखा। शायद किसी ने देखा भी हो, पर इस विषय का कोई लेख कही नही मिलता। यह प्रवाद सात समुद्र पार करके अमेरिका पहुँचा। वहाँ के विद्वानों को हंस का यह अद्भुत गुण सुन कर आश्चर्य हुआ। पर वे लोग ऐसी ऐसी बातो को चुपचाप मान लेने वाले नहीं। इस देश मे हंस-विषयक यह प्रवाद हजारो वर्षों से सुना जाता है। पर इसके सत्यासत्य की जाँच आज तक किसी ने नहीं की। यदि किसी ने की भी हो तो उसका फल कहीं लिपिबद्ध नही मिलता। अमेरिका मे हवार्ड नाम का एक विश्व-विद्यालय है। उसमे लांगमैन साहब एक अध्यापक हैं। आपने हंस के इस आलौकिक गुण की परीक्षा का प्रण किया। इसलिए आपने कई हंस मँगा कर पाले और अनेक तरह से उनकी परीक्षा की। पर नीर का क्षीर से अलग करने मे उन्होंने हंस को असमर्थ पाया, तो हंस के नीर-क्षीर-विवेक-विषयक वाक्यों की क्या संगति हो ? इस विषय के दो-चार वाक्य सुनिए—

> नीर-क्षीर-विवेके हंस्यालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
> विश्वास्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥
>
> —भामिनीविलास।

हे हंस, यदि क्षीर को नीर से अलग कर देने का विवेक तू

ही शिथिल कर देगा तो, फिर इस जगत मे अपने कुलव्रत का पालन और कौन करेगा ?

वितीर्णशिक्षा इव हृत्पतस्थ सरस्वतीवाहनराज हंसैः ।
ये क्षीर-नीर-प्रविभागदक्षा यशस्विनस्ते कवियो-जयति ॥
—श्रीकण्ठचरित ।

हृदय में स्थित सरस्वती के वाहन राजहंसो ने मानो जिनको शिक्षा दी है, ऐसे क्षीर-नीर-विभाग करने मे दक्ष कविजनो की महिमा खूब जागरूक है ।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यतः ॥
—शकुन्तला ।

हंस जिस तरह क्षीर ग्रहण कर लेता है और उसमे मिला हुआ पानी पडा रहने देता है, वैसे ही यह भी बध करने योग्य मुझे मारेगा और रक्षणीय द्विज की रक्षा करेगा ।

प्रज्ञास्तु जल्पता पुंसां श्रुत्वा वाच. शुभाऽशुभाः ।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंस. क्षीरमिवाम्भस. ॥
—महाभारत—आदिपर्व

लोगो के मुँह मे भली-बुरी बाते सुन कर बुद्धिमान् आदमी अच्छी बात को वैसे ही ग्रहण कर लेता है, जैसे हंस जल मे से दूध को ग्रहण कर लेता है ।

यजुर्वेद के ततिरेय ब्राह्मण के दूसरे अध्याय मे एक वाक्य है । उसका मतलब है—जिस तरह क्रौञ्च-पक्षी जल और दूध को अलग-अलग करके दूध का ही पान करता है, उसी तरह इन्द्र भी जल से सोमरस को अलग कर के उसका पान कर लेता है । इसकी टीका सायनाचार्य ने इस प्रकार की है—

क्षीरपात्रे स्वमुखे प्रक्षिप्ते सति मुखगतरससम्पर्कात्क्षीरांशो जलांशश्चौभौ विविच्यते ।

अर्थात्—जल-मिश्रित दूध के बर्तन में हंस जब अपनी चोंच डालता है, तब मुख गत रस-विशेष का योग होते ही जल और दूध अलग-अलग हो जाते हैं, या अलग-अलग जान पड़ते हैं।

इस पिछले अवतरण से यह सूचित होता है कि किसी-किसी की राय मे हंस के मुंह मे एक प्रकार का रस होता है। उस रस का मेल होने से पानी और दूध अलग-अलग हो जाते हैं। यदि इस रस मे खट्टापन हो तो दूध का जम कर दही हो जाना सम्भव है। पर इसके लिए कुछ समय चाहिए। क्या हंस की चोंच दूध के भीतर पहुँचते ही दूध जम जाता होगा? सम्भव है, जम जाता हो, पर यह बात समझ में नहीं आती कि पात्र में भरे हुए जल-मिश्रित दूध में से जल को अलग करके दूध को हंस किस तरह पी लेता है। अध्यापक लांगमैन की परीक्षा से तो यह बात सिद्ध नहीं हुई।

अमेरिका के एक और विद्वान् ने हंस के नीर-क्षीर-विषयक प्रवाद का विचार किया है। आपका नाम है डाक्टर काम्बस। आप वाशिंगटन में रहते हैं। आपका मत कि हंस के मुँह की बनावट ऐसी है कि जब वह कोई चीज़ खाता है, तब उसका रस-मय पतला अंश उसके मुँह से बाहर गिर पड़ता है और कड़ा अंश पेट में चला जाता है। आपके मत में दूध से मतलब इसी कड़े अंश से है! बहुत रसीली चीज के कठोर अंश का बाहर बह आना सम्भव जरूर है पर किसी चीज के कठोर अंश का अर्थ दूध करना हास्यास्पद है।

अच्छा हंस रहते कहाँ हैं और खाते क्या है? हंस बहुत करके इसी देश मे पाये जाते है। उनका सबसे प्रिय निवास्थान मानसरोवर है। यह सरोवर हिमालय पर्वत के ऊपर है। सुनते हैं, यह तालाब बहुत सुन्दर है। इसका जल मोती के समान निर्मल है। यही हंस अधिकता से रहते हैं और यहीं वे

अण्डे देते हैं। जाड़ा, आरम्भ होते ही, शीताधिक्य के कारण, मानसरोवर छोड़ करके नीचे चले आते हैं, पर विन्ध्याचल के आगे वे नहीं बढ़ते। विन्ध्य और हिमालय के बीच ही में निर्मल जल राशि-पूर्ण तालाबों और नदियो के किनारे वे रहते हैं। चैत्र-वैशाख में वे हिमालय की तरफ़ चले जाते है। जिन जलाशयो मे कमलों की अधिकता होती है, वे हंसों को अधिक प्रिय होते हैं। वहीं वे अधिक रहते हैं। उनके शरीर का रङ्ग सफ़ेद होता है और उनके पैर लाल होते हैं। चोंच का रङ्ग भी लाल होता है, डील-डौल उनका बतक से कुछ बड़ा होता है।

यदि हंस दूध पीते हैं, तो दूध उनको मिलता कहाँ से है? मानसरोवर मे उन्होने गायें या भैंसें तो पाल नहीं रक्खीं और न हिन्दुस्तान ही के किसी तालाब या नदी में उनके दूध पीने की कोई सम्भवना। इससे गाय भैस का दूध पीना हंसों के लिए असम्भव-सा जान पड़ता है। कोई-कोई कवि-जन कहते हैं कि हंस मोती चुगते हैं। पर मोती भी मानसरोवर मे नहीं पैदा होते। यदि उसमें मोतियो का पैदा होना मान भी लिया जाय तो हिन्दुस्तान के तालाबों मे, जहाँ वे कुछ दिन रहते हैं, मोतियों का पैदा होना आज तक नहीं सुना गया। हां, एक बार हमने कहीं पढ़ा था कि पंजाब, या राजपूताने की किसी झील मे कुछ शुक्तियाँ ऐसी मिली थीं जिनमे मोती थे, पर क्या जितने हंस मानसरोवर छोड़ कर नीचे आते हैं वे सिर्फ उसी झील में जाकर रहते और मोती चुगते हैं? वहाँ भी यदि मोती बिखरे हुए पड़े हों, तभी उन्हे हंस-गण आसानी से चुगेंगे? पर यदि वे शुक्तियो के भीतर ही रहते हों तो उनको फोड़ कर मोती निकालना हंसो के लिए जरा कठिन काम होगा। पर इन सम्भावनाओं का कुछ अर्थ नहीं। निर्मल जल की उपमा मोती से दी जाती है और मानसरोवर का जल अत्यन्त निर्मल है। इससे उसके

मोती सदृश निर्मल जल की उपमा मोती से देते देते लोगों ने जल को ही मोती मान लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। अतएव- "की हंसा मोती चुगैं की भूखे रह जायँ" आदि मे मोती चुगने से मतलब मोती के समान निर्मल जल पीने से जान पड़ता है। यह पीने की बात हुई। अब खाने की बात का विचार कीजिए। नैषधचरित के पहले सर्ग मे लिखा है कि राजा नल ने एक हंस पकड़ा। हंस आदमी की बोली बोलता था। उसने राजा से कहा—"फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।" अर्थात् पानी में पैदा होने वाले पौधों और बेलों के फलों और कन्दों से मैं मुनियों के समान अपना जीवन-निर्वाह करता हूँ। भामिनी-विलास में जगन्नाथराय ने हंस की एक अन्योक्ति कही है, यथा—

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता—
न्यम्बूनि यत्रनलिनानि निषेवितानि।
रे राजहंस! वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः?

रे राजहंस, जिसके आश्रय में रह कर तूने मृणालदण्डो को खाया, जल-पान किया, और नलिनों का स्वाद लिया उस सरोवर का तू किस प्रकार प्रत्युपकार करेगा? मेघदूत मे कालिदास कहते हैं—

आकैलाशाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः।
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः॥

अर्थात् बिस और किसलय रूपी पाथेय (रास्ते में खाने-पीने की सामग्री) लेने वाले राजहंस आकाश में, कैलास पर्वत से आप (मेघ) के साथी या सहायक होंगे। विक्रमोर्वशी में भी कालिदास एक जगह कहते हैं—

सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात सूत्रं मृणालादिव राजहंसी।

अर्थात् यह सुरांगना (मेरा मन शरीर से उसी तरह) खींच रही है, जिस तरह राजहंसी मृणाल से सूत्र खींचता है। इन अवतरणों से प्रकट है कि हंस चाहे मोती चुगते और दूध पीते ही क्यों न हों; पर वे पानी भी पीते है और जलरुह पौधो के फल फूल, मूल, नाल, मृणाल और विसतन्तु भी खाते है। हंसो को जलपूर्ण जलाशयों मे रहना अधिक पसन्द है। वहाँ इनके खाने की सामग्री, विशेष करके मृणालदंड, उनके भीतर के विस-तन्तु और उससे निकलने वाला रस है। कमल-नाल को तोड़ने से उसके भीतर से सफेद-सफेद सूत-सी एक चीज निकलती है उसी को बिस-तन्तु कहते हैं। सुनते है, उसे हंस बहुत खाते हैं मृणाल-दंड की गाँठो से एक तरह का रस भी निकलता है, वह पतले दूध की तरह सफेद होता है। उसमे कुछ मीठापन भी होता है। उस रस का भी नाम क्षीर है। पेड़ो से निकलने वाले पानी के सदृश्य सफेद रङ्ग के प्राय: सभी प्रवाही पदार्थों का नाम क्षीर है। यहाँ तक कि गूलर, बरगद, थूहड़ और मदार तक से निकलने वाली सफेद चीज़ को हम लोग दूध ही कहते हैं। मृणाल-दंड पानी में रहते हैं। उन्हीं के भीतर से क्षीर-तुल्य सफेद रस निकलता है। उसी रस को हंस पीते या खाते है। अतएव, इस तरह, पानी के भीतर से निकाल कर हंसो का दूध पीना जरूर सिद्ध है। अनुमान होता है कि आरम्भ मे इसी प्रकार के नीर-क्षीर के पृथकत्व से पंडितों का मतलब रहा होगा। धीरे-धीरे लोग वह बात भूल गये। उनकी यह समझ हो गई कि मामूली जल-मिश्रित दूध से हंस जल को पृथक् कर देते हैं और जल को छोड़ कर दूध भर ही जाते है।

८—कवियों की ऊर्म्मिला-विषयक उदासीनता

कवि स्वभाव ही से उच्छृङ्खल होते हैं। वे जिस तरफ झुक गये, झुक गये। जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया; जी मे न आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठा कर न देखा। यह उच्छृङ्खलता या उदासीनता सर्व-साधारण कवियो में तो देखी ही जाती है, आदि कवि तक इससे नहीं बचे। क्रौंच पक्षी के जोड़े में-से एक पक्षी को निषाद द्वारा बध किया गया देख जिस कवि-शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और जिसके मुख से "मानिषाद" इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी वही पर दुःख-कातर मुनि, रामायण निर्म्माण करते समय, एक नवपरणीता दुःखिनी वधू को बिलकुल ही भूल गया। विपत्ति विधुरा होने पर उसके साथ अल्पादल्पतरा समवेदना तक उसने प्रकट न की—उसकी खबर तक न ली।

वाल्मीकि रामायण का पाठ किंवा पारायण करने वालो को उर्म्मिला के दर्शन सब से पहले जनकपुर मे सीता, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के साथ होते हैं। सीता की बात तो जाने ही दीजिए। उनके और उनके जीविताधार रामचन्द्र के चरित्र-चित्रण ही के लिए रामायण की रचना हुई है। माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के विषय मे कोई विशेषता नहीं। क्योकि आग से भी अधिक सन्ताप पैदा करने वाला पति-वियोग उनको हुआ ही नहीं। रही बाल-वियोगिनी देवी ऊर्म्मिला, सो उसका चरित्र सर्व्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उनके साथ अन्याय किया। मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यो? इस सर्वसुखवंचिता के विषय में इतना पक्षपात-कार्पण्य क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम इतना श्रुतिसुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है और तापसजनो का शरीर सदैव शीतातप सहने

के कारण कठोर और कर्कश होता है—पर नही, आपका काव्य पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कठोरता प्रेमी नही। भवतु नाम। हम इस उपेक्षा का एक मात्र कारण भगवती ऊर्म्मिला का भाग्यदोष ही समझते हैं। हा हतविधिलसते! परमकारुणिकेन मुनिना वाल्मीकिनापि विस्मृतासि।

हाय वाल्मीकि! जनकपुर मे तुम ऊर्म्मिला को सिर्फ एक बार, वैवाहिक-वधू-वेश मे, दिखा कर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर सुसराल मे उसकी सुधि यदि आपको न आई थी तो न सही पर, क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण-समय मे भी उसके दुःखाश्रु-मोचन करना आपको उचित न जँचा? रामचन्द्र के राज्यभिषेक की जब तैयारियाँ हो रही थी, जब राजान्तःपुर ही क्यों, सारा नगर नन्दन-वन बन रहा था, उस समय नवला ऊर्म्मिला कितनी खुशी मना रही थी, सो क्या आपने नहीं देखा? अपने पति के परमाराध्य राम को राज्य-सिंहासन पर आसीन देख ऊर्म्मिला को कितना आनन्द होता, इसका अनुमान क्या आपने नही किया? हाय! वही ऊर्म्मिला एक घटे बाद, राम-जानकी के साथ, निज पति को १४ वर्ष के लिए बन जाते हुए देख, छिन्नमूल शाखा की तरह राज-सदन की एक एकान्त कोठरी मे भूमि पर लोटती हुई क्या आपके नयनगोचर नही हुई? फिर भी उसके लिए आपकी "बचने दरिद्रता" ऊर्म्मिला वैदेही की छोटी बहिन थी। सो उसे बहिन का वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा। पर इतनी घोर दुःखिनी होने पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर देख भी न लेने दिया! जिस दिन राम और लक्ष्मण, सीता-देवी के साथ, चलने लगे—जिस दिन उन्होंने अपने पुरत्याग से अयोध्या नगरी को अन्धकार में, नगरवासियों को दुःखोदधि में और पिता को मृत्यु-मुख में निपतित किया, उस दिन भी आपको

ऊर्म्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहां पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा इतनी उपेक्षा !

लक्ष्मण ने अकृत्रिम भ्रातृस्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया। उन्होने राज-पाट छोड़ कर अपना शरीर रामचन्द्र को अर्पण किया। यह बहुत बड़ी बात की। पर ऊर्मिला ने इससे भी बढ़ कर आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मसुखोत्सर्ग उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी १४ वर्ष पति वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढ़त्व को प्राप्त होते ही जिस ऊर्म्मिला ने, रामचन्द्र और जानकी के लिए, अपने सुख सर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अन्तर्दर्शी आदि कवि के शब्द-भण्डार में दरिद्रता ?

पति-प्रेम और पति-पूजा की शिक्षा सीतादेवी को जहाँ मिली थी वहीं उर्म्मिला को भी मिली थी। सीतादेवी की सम्मति

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते॥

ऊर्म्मिला की क्या यह भावना न थी ? जरूर थी। दोनो एक ही घर की थी। ऊर्म्मिला भी पतिपरायणता-धर्म्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने लक्ष्मण के साथ बन-गमन की हठ, जान-बूझ कर नहीं की। यदि वह भीं साथ जाने को तयार होती, तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता, और ऊर्म्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य-युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यही सोच कर ऊर्म्मिला ने सीता का अनुकरण नहीं किया। यह बात उसके चरित्र की

बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है। बाल्मीकि को ऐसी उच्चाशय रमणी का विस्मरण होते देख किस कविता-मर्मज्ञ को आन्तरिक वेदना न होगी?

तुलसीदासजी ने भी ऊर्म्मिला पर अन्याय किया है। आपने इस विषय में आदि कवि का ही अनुकरण किया है। "नाना-पुराणनिगमागमसम्मत" लेकर जब रामचरित मानस की रचना करने की घोषणा की थी, तब यहाँ पर आदि काव्य को ही अपने वचनों का आधार मानने की वैसी कोई जरूरत न थी। आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को ऊर्म्मिला से नहीं मिलने दिया। माता से मिलने के बाद, झट कह दिया—

गये लषण जहँ जानकिनाथा।

आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक 'लषण' पर इतनी सख्ती क्यो? अपने कमण्डलु के करुणावारि का एक भी बूँद आपने ऊर्म्मिला के लिए न रक्खा। सारा का सारा कमण्डलु सीता को समर्पण कर दिया। एक ही चौपाई में ऊर्म्मिला की दशा का वर्णन कर देते। अथवा उसी के मुँह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम-जानकी के बनवास और अपने पति के वियोग के सम्बन्ध में क्या-क्या भावनाये उसके कोमल हृदय में उत्पन्न हुई थी। ऊर्म्मिला को जनकपुर से साकेत पहुँचा कर उसे एक दम ही भूल जाना अच्छा नहीं हुआ।

हाँ, भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है। राम-लक्ष्मण और जानकी के वन से लौट आने पर भवभूति को बेचारी ऊर्म्मिला एक बार याद आ गई है। चित्र-फलक पर ऊर्म्मिला को देख कर सीता ने लक्ष्मण से पूछा—"इयमप्यपरा का?" अर्थात् लक्ष्मण कौन है? इस प्रकार देवर से पूछना कौतुक से खाली नहीं। इसमे सरसता है। लक्ष्मण इस बात को समझ गये। वे कुछ लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे—ऊर्म्मिला

को सीता देवी पूछ रही है। उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही ऊर्म्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया। उनके हाथ से वह ढक गया। कैसे खेद की बात है कि ऊर्म्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्र कवियो के द्वारा भी आज तक इसी तरह ढकता आया।

६—नल का दुस्तर दूत कार्य

प्राचीन समय मे भारत का अधिकतर अंश जिसे आजकल कमायूँ कहते हैं निषद देश के नाम से प्रसिद्ध था। अलका उसकी राजधानी थी। उसमे वीरसेन का पुत्र नल नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था।

नल, एक दिन, मृगया के लिए राजधानी से बाहर निकला। आखेट करते-करते वह अकेला दूर तक अरण्य मे निकल गया। वहाँ उसने एक बड़ा मनोहर जलाशय देखा। उसके तट पर एक अलौकिक रंग रूपधारी हंस, थक जाने के कारण, आँखे बन्द किए; बैठा आराम कर रहा था। नल की दृष्टि उस पर पड़ी। चुपचाप, दबे पैरों, जाकर राजा ने उसे पकड़ लिया। हंस का विचरण-स्वातन्त्र्य जाता रहा। पराधीनता के दुख और अपनी स्त्री तथा माता के वियोग-जन्य ताप की चिन्ता से वह व्याकुल हो उठा। उसने बहुत विलाप किया। मुक्ति दान देने के लिये राजा से उसने प्रार्थना भी की और एक तुच्छ पक्षी पर अनु

चित बल प्रयोग करने के लिए उसकी भर्त्सना भी की। राजा को दया आई। उसने उस हंस को छोड़ दिया।

हंस इस पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मैं एक असाधारण पक्षी हूँ। आपने मुझे छोड़ दिया, इसका मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। आप अभी तक अविवाहित हैं अतएव आप ही के सदृश अलौकिक रूप-लावण्यवती सुन्दरी दमयन्ती को आप पर अनुरक्त कराने की मैं चेष्टा करूँगा। आपका कल्याण हो। मैं चला। अपने उद्योग की सफलता का संवाद सुनाने के लिए शीघ्र ही मैं लौट कर आपके दर्शन करूँगा।

नल से विदा होकर हंस ने विदर्भ देश—आधुनिक बरार—की राह ली। वहाँ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती उस समय त्रिभुवन मे एक ही सुन्दरी थी। उसकी रूपराशि का वर्णन करके हंस ने नल को दमयन्ती पर अनुरक्त किया था। अब उसे दमयन्ती को नल पर अनुरक्त करना था। आकाश मार्ग से हंस शीघ्र ही विदर्भ देश की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँचा। दमयन्ती उस समय अपने क्रीड़ा-स्थान मे सखियों के साथ खेल रही थी। हंस मनुष्य की बोली बोलना जानता था। एकान्त मे नल के सौन्दर्य, बल-वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुना कर हंस ने उसे नल के प्रेम-पाश में फाँस लिया। यही नहीं, उसने दमयन्ती से यह वचन तक ले लिया कि मर चाहे जाऊँ पर नल को छोड़ कर और किसी से विवाह न करूँगी।

यह सुख-समाचार नल को सुना कर हंस अपने आवास को चला गया। इधर नल की चिन्तना ने दमयन्ती को अतिशय सन्तप्त कर दिया। एक दिन विरह-व्यथा से अत्यन्त व्यथित होकर वह मूर्छित हो गई! पिता भीम उसके पास दौड़े आये। कन्या की दशा देख कर उसके सन्ताप का कारण वे ताड़

गये। उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह कर डालना चाहा। स्वयंवर की तिथि निश्चित हुई।

स्वयंवर मे शरीक होने के लिए देश-देश के नरेश चले। नल ने भी अलका से कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। उधर नारद से स्वयंवर का समाचार और भैमीं का सौन्दर्य-वर्णन सुन कर उसे पाने की इच्छा से, इन्द्र ने भी देवलोक से प्रस्थान किया। उसके पीछे यम, वरुण और अग्नि भी चले। मार्ग में उन चारों की भेट नल से हुई। नल की भुवनातिव्यापिनी सुन्दरता देख कर उन देवताओ के होश उड़ गये। उन्होने इस बात को निश्चित समझा कि नल के होते दमयन्ती कदापि उनके कण्ठ में वरमाला न पहनायेगी। अतएव, कपट कौशल की ठहरी। नल की दान-शूरता आदि की प्रशंसा करके इन्द्र महाराज नल के याचक बने। आपने नल से याचना की कि तुम हमारे दूत बन कर दमयन्ती के पास जाओ और हमारी तरफ से ऐसी वकालत करो, जिसमे वह हमी चारों में से किसी एक को अपना पति बनाये।

इस प्रार्थना पर नल को महा दुःख हुआ। उसे क्रोध भी हो आया। उसने इन्द्रादि के इस कार्य की बड़ी निन्दा की। अपना सच्चा हाल भी उसने कह सुनाया। संकल्प द्वारा मुझे ही दमयन्ती अपना पति बना चुकी है यह भी नल ने साफ-साफ कह दिया। भीम-भूपाल के अन्तपुर मे दूत बन कर जाने की असम्भवता का भी नल ने उल्लेख किया। पर इन्द्र ने एक न मानी। उस समय उसे उचित-अनुचित का कुछ भी ध्यान न रहा। फिर उसने नल की चाटुकारिता आरम्भ की। आजिज आकर नल ने इन्द्रादि देवताओं का दूत बनकर दमयन्ती के पास जाना स्वीकार कर लिया। इन्द्र ने नल को एक ऐसी विद्या सिखला दी जिसके प्रभाव से, इच्छा करने पर, वह और लोगो की दृष्टि से अदृश्य

हो सके पर वह सबको देखता रहे। नल इस तरह, इधर दूत बनकर कुण्डिनपुर पहुँचा। उधर पूर्वोक्त चारो दिक्पालों ने पृथक्-पृथक् अपनी दूतियाँ भी दमयन्ती के पास, उसे अपनी ओर अनुरक्त करने के लिए भेजीं। इतने छल-कपट और प्रयत्न को काफी न समझ कर उन्होने दमयन्ती के पिता को बहुत कुछ घूँस भी दी। सबने अद्भुत-अद्भुत उपायन राजा भीम को भेजे।

नल ने अपना रथ, अपने अनुचर और अपना असबाव आदि कुण्डिनपुर के बाहर ही छोड़ा। दिक्पालों की स्वार्थपरता और निर्लज्जता को धिक्कारते हुए उसने नगर में प्रवेश किया। जी कड़ा करके वह राज-प्रसाद के पास पहुँचा। धीरे-धीरे वह उसके भीतर घुसा। इन्द्रदत्त तिरस्कारिणी विद्या के प्रभाव से उसे किसी ने न देखा। घूमते-घामते वह दमयन्ती के महलो मे दाखिल हुआ। कहीं किसी कामिनी के शरीर का स्पर्श होने से वह झिझक उठा। कही किसी का कोई अनावृत्त अङ्ग देख कर उसने आँखे मूँद लीं। किसी को अपने स्थिति-स्थान की ओर मुख किये देख वह डर उठा कि कहीं मैं देख तो नहीं लिया गया। इस प्रकार अन्तःपुर की सैर करते हुए वह दमयन्ती के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसके रूप-माधुर्य की शोभा देखते वह देर तक वहाँ खड़ा रहा, उसने सबको देखा; उसे कोई न देख सका। तदनन्तर, समय अनुकूल देख, अङ्गीकृत दूतत्व निर्वाह के इरादे से, वह प्रकट हो गया। इसके बाद वहाँ जो कुछ हुआ उसके वर्णन में श्री हर्ष ने, अपने नैषध-चरित में अपूर्व कवित्व-कौशल दिखाया है। उसी का भावार्थ, संक्षेप में, आगे दिया जाता है।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि नल और दमयन्ती दोनों, पहिले ही से, एक दूसरे पर अनुरक्त थे। तिस पर भी नल ने याचक इन्द्र की याञ्चा को विफल कर देना अपने वश के विरुद्ध समझा। अतएव उसने दूत बनना स्वीकार कर लिया।

नल के चरित्रदार्ढ्य, साहस और स्वार्थत्याग का यह अद्भुत उदाहरण है। अब, इस समय यह दोनो प्रेमी एक दूसरे के सामने हैं। नल से तो कोई बात छिपी नही, पर दमयन्ती को इसका अत्यल्प भी ज्ञान नही कि यह कौन है। इससे इस घटना की महत्ता बहुत बढ़ गई है - इसमें एक अनिर्वचनीय रस उत्पन्न हो गया है। अस्तु।

नल के अकस्मात् प्रकट होने पर दमयन्ती और उसकी सहेलियो ने उसे इस अनिमेष-भाव से देखा मानो वे उसे दृष्टि-द्वारा पी जाना चाहती हैं। नल को इस तरह कुछ देर तक देख चुकने पर, किसी-किसी कामिनी ने लाज से सिर नीचा कर लिया, किसी-किसी ने उसके रूप-लावण्य के समुद्र मे गौता लगाया। और, किसी-किसी ने उसे प्रत्यक्ष मन्मथ समझ कर विस्मय की पराकाष्ठा के पार प्रयाण किया।

किसी को यह बात पूछने का साहस न हुआ कि—आप कौन है और कहाँ से आये हैं। नल के अपूर्व रूप और आकस्मिक प्रादुर्भाव ने उन्हे अप्रतिभ कर दिया। उनसे उस समय केवल यही बन पड़ा कि, अभ्युत्थान की वाञ्छा से, अपने-अपने आसनो से वे उठ खड़ी हुई। नल के संदर्शन से दमयन्ती को वैसा ही परमानन्द प्राप्त हुआ जैसा कि वर्षा-काल आने पर पर्वत से निकली हुई नदी को मेघो के धारासार से प्राप्त होता है।

नल के प्रत्येक अङ्ग की सुन्दरता का मन ही मन अभिनन्दन करके दमयन्ती के हृदय मे जिन भावो का उदय हुआ उनका वर्णन करने में केवल महाकवि ही समर्थ हो सकते है। दमयन्ती ने देखा कि उसकी सारी सहेलियाँ कुण्ठित-कण्ठ हो रही है। उनके मुख मण्डलो पर आतङ्क छाया हुआ है। अतएव वे दमयन्ती की तरफ से उस आगन्तुक पुरुष से कुशल-प्रश्न करने मे असमर्थ हैं। लाचार, नम्र-मुखी दमयन्ती स्वयं ही नल से इस प्रकार गद्गद् भाव-पूर्ण वाणी बोली—

"आचार्यवेत्ता महात्माओं ने यह नियम कर दिया है कि अतिथि आने पर यदि और कुछ न बन पड़े तो प्रेम-पूर्ण अक्षरों की रस-धारा ही को मधुपर्क बनाना चाहिए। अभ्यागत की तृप्ति के लिए अपनी आत्मा को भी तृणवत् समझना चाहिए। और यदि, उस समय पाद्य और अर्घ्य के लिए जल न मिल सके तो आनन्दाश्रुओं ही से उस विधि का सम्पादन करना चाहिए। आपका दर्शन होते ही मैं अपनी जो आसन छोड़ कर खड़ी हो गई वह यथार्थ में आपके बैठने योग्य नहीं, तथापि मेरी प्रार्थना पर बहुत नहीं तो क्षण ही भर के लिए, कृपा-पूर्वक, आप उसे अलंकृत करें। यदि आपकी इच्छा और कहीं जाने की हो तो भी, मेरे अनुरोध से, आप मेरी इस विनती को मान लेने की उदारता दिखावें। आपके ये पद-द्वय शिरीषकलिकाओं की मृदुता का भी अभिमान चूर्ण करने वाले हैं। यह तो आप बताइए कि आपका निर्दय हृदय कब तक इन्हें, इस तरह खड़े रख कर, क्लेशित करना चाहता है? वसन्त बीत जाने पर जो दशा उपवनों की होती है वही दशा आपने किस देश की कर डाली? आपके मुख से उच्चारण किए जाने के कारण कृतार्थ होने वाले आपके नाम के अक्षर सुनने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ। अपने दर्शनों से सारे संसार को तृप्त करने वाले आप जैसे पियूषमुख (चंद्रमा) को उत्पन्न करके किस वंश ने समुद्र के साथ स्पर्द्धा करने का बीड़ा उठाया है? उस वंश का यह उद्योग सर्वथा स्तुत्य और उचित है। इस दुष्प्रवेश्य अन्तःपुर में आपके प्रवेश को मैं महा-सागर को पार कर जाना समझती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े साहस का कारण क्या है और इसका फल भी क्या हो सकता है? आपके इस सुरक्षित अन्तःपुर-प्रवेश को मैं अपने नेत्रों के कृतपुण्य का फल समझती हूँ। आपकी आकृति सर्वथा भुवन-मोहिनी है। द्वारपालों को अन्धा कर डालने की शक्ति भी आप में बड़ी ही अद्भुत है। आपकी शरीर-कान्ति भी

महा अलौकिक है। इससे जान पड़ता है कि आप कोई दिव्य पुरुष, अर्थात् देवता, हैं। मन्मथ आप नहीं हो सकते, क्योंकि वह मूर्ति हीन है। अश्विनीकुमार भी आप नहीं हो सकते, क्योंकि वे कभी अद्वितीय नहीं देखे गए। यदि आप मनुष्य हैं तो यह पृथ्वी कृतार्थ है। यदि आप देवता है तो देवलोक की प्रशंसा नहीं हो सकती। यदि आपने अपने जन्म से नाग-वंश को अलंकृत किया है तो नीचे, अर्थात् पाताल में, होने पर वह सब लोकों के ऊपर समझा जाने योग्य है। इस भूमण्डल में किस मनुष्य ने इतना अधिक पुण्य सम्पादन किया है जिसे कृतकृत्य करने के उद्देश्य से आप अपने पैरों को चलने का कष्ट दे रहे हैं? इस प्रकार के न मालूम कितने सन्देह मेरे चित्त में उत्पन्न हो रहे हैं। अतएव आप अधिक देर तक मुझे सन्देह-सागर मे न डुबोइये। बतला दीजिए कि किस धन्य के आप अतिथि हैं। आपके सुन्दर रूप का दर्शन करके मेरी दृष्टि ने तो अपने जन्म का फल पा लिया। यदि आप अपने मुख से अब कुछ कहने की कृपा करें तो मेरे कानों को भी सुधासार के आस्वादन का आनन्द मिल जाय।"

अपनी प्रियतमा के मुख से इस तरह शहद के समान मीठी वाणी सुनने से नल का अजीब हाल हुआ। दमयन्ती के ओष्ठ-बन्धूकरूपी धन्वा से, वाणी के बहाने निकली हुई मन्मथ की पञ्चवाणी (पाँच बाण) कानों की राह से नल के हृदय के भीतर धँस गई। प्रिया दमयन्ती के मुख से ऐसे मधुर और ऐसे प्यारे वचन सुन कर नल, सुधा-समुद्र मे, शरीरान्तवर्त्तिनी मज्जा-पर्य्यन्त निमज्जित हो गया। स्तुति ऐसी चीज है जो शत्रु के भी मुँह से मीठी मालूम होती है। फिर प्राणोपम प्रिय के मुँह से उसके मिठास का कहना ही क्या है।

नल ने स्वयं दमयन्ती के आसन पर बैठना तो उचित न समझा। पर दमयन्ती की प्रार्थना पर उसकी सखी के आसन

पर वह बैठ गया। इस समय नल हृदयगत धैर्य्य और मनोभाव में युद्ध ठन गया। जीत धैर्य्य ही की हुई। मनोभाव ने हार खाई। उसकी एक न चली। विकारों की उत्पादक प्रबल सामग्री के उपस्थित होने पर भी यदि महात्माओं का मन कलुषित हो जाय तो फिर वे महात्मा ही कैसे—

दमयन्ती ने नल से जो प्रश्न किए उनमें से एक को छोड़कर और सब प्रश्न नल हज़म कर गये। आपने अपनी कथा का आरम्भ इस प्रकार किया—

मैं दिशाओं के अधिपतियों की सभा से तुम्हारे ही पास अतिथि होकर आया हूं। साथ ही अपने प्रभुओं के सन्देश, बड़े आदर के साथ, अपने हृदय में प्राणों की तरह धारण करके लाया हूं। मेरा आतिथ्य-सत्कार हो चुका। बस अब और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। बैठ क्यों नहीं जातीं? आसन क्यों छोड़ दिया? दूत बन कर मैं जिस काम के लिये आया हूं उसे यदि तुम सफल कर दोगी तो मैं उसी को अपना बहुत बड़ा आतिथ्य समझूँगा। हे कल्याणि! चित्त तो तुम्हारा प्रसन्न है? शरीर तो सुखी है? विलम्ब करने का यह समय नहीं। इससे जो कुछ मैं निवेदन करने जाता हूं उसे कृपा करके सुनो। मेरा निवेदन यह है।

जब से तुम्हारी कुमारावस्था का आरम्भ हुआ तभी से तुम्हारे गुणों ने इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर के हृदय पर अधिकार कर लिया है। तुम्हारे शैशव और यौवन की सन्धि से सम्बन्ध रखने वाली बातों का विचार करके इन दिक्पालों का चित्त प्रतिदिन अधिकाधिक खिन्न हो रहा है। दो राजों के राज्य मे जो दशा प्रजा की होती है वही दशा इस समय इन देवताओं की हो रही है। पञ्चशायकरूपी चोर ने इनके धैर्य्यरूपी सारे धन का अपहरण कर लिया है।

मैं तुमसे इन्द्र का क्या हाल बयान करूँ सूर्य्य जिस समय पूर्व दिशा में उदित होता है उस समय उसका बिम्ब वसा ही अरुण होता है जैसा कि चन्द्रमा का। तुम्हारे वियोग मे महेन्द्र सूर्य्य को भी, सदृश्यता के कारण, चन्द्रमा समझ कर अत्यन्त क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देखता है। किसका अपराध और किस पर क्रोध। परन्तु वह बेचारा करे क्या? वह इस समय बिल्कुल ही विवेकहीन हो रहा है। केवल तीन नेत्र-धारी ने मनोज महोदय के साथ जो सुलूक किया था उसी को वह अब तक नहीं संभाल सका। मेरी समझ में नही आता कि यदि अब सहस्रनेत्रधारी उस पर रुष्ट हुआ तो उस बेचारे की क्या दशा होगी? मनसिज के तो शरीरकृत अपराधों से शचीपति सन्तप्त हो रहा है कोकिल का तो वचनकृत अपराध भी उसे सहन नहीं होता। इस डर से कि कहीं पिक का शब्द कान में न पड़ जाय वह अपने नन्दनवन में जाकर बैठने का साहस भी नहीं कर सकता। और कहाँ तक कहूं, शङ्कर के जटाजूट वाले बाल-चन्द्रमा को अपना अपकार-कर्ता समझ कर उसने महादेव का पूजन तक करना छोड़ दिया है। तुम्हारे वियोग में उसके धैर्य्य का समूल उन्मूलन हो गया है। कल्पवृक्ष संसार के दारिद्र-हरण का सामर्थ्य रखते हैं। परन्तु इस समय वे स्वयं ही महादरिद्री हो रहे है। इन्द्र के शरीर का सन्ताप दूर करने के उनके पत्तों की शय्याये बना डाली गई हैं। अतएव वे सब बेपत्ते के दारिद्र-दीन खड़े हुए हैं। तुम शायद यह शङ्का करो कि क्या अमरपुर में कोई ऐसा पंडित नहीं जो अपने सदुपदेश से इन्द्र को धैर्य्य-प्रदान करे। शङ्का तुम्हारी निर्मूल नहीं। परन्तु उपदेश सुने कौन? रतिपति के धन्वा की अविरत टङ्कार ने इन्द्र को दोनो कानों से बहरा कर डाला है। अतएव महेन्द्र की मोह-निद्रा दूर करने वाले सुर-गुरु वृहस्पति की धैर्य्य-विधायक वाणी सर्वथा व्यर्थ हो रही है।

अष्टमूर्ति शङ्कर का जो देदीप्यमान शरीर है और याचक जिसकी नित्य उपासना करते हैं उस अग्नि का भी बुरा हाल है। कुसुम-शायक ने उसे भी तुम्हारा दास बनने की आज्ञा दे दी है। दूसरों को जलाते समय अग्नि अब तक यह न जानता था कि उन्हें कितना ताप होता है—उन्हे कितनी जलन होती है। परन्तु तुम्हारी सहायता से अग्नि को जला कर इस समय अनङ्ग उसे यहाँ तक विनीत और विनम्र बना रहा है कि भविष्यत् में दूसरों को संतोप देने का उसे कदापि साहस न होगा। क्योंकि, अब उसे जलने का दु.ख अच्छी तरह ज्ञात हो गया है। शङ्कर के तीसरे नेत्र मे वास करने वाले पावक ने मनसिज को एक बार जला कर भस्म कर दिया था। इस बात को तुमने भी पुराणों में सुना होगा। सो वह पुराना बदला लेने के लिए इस समय मनोज ने तुम्हारे नेत्रों का सहारा लिया है। उन्ही के भीतर सुरक्षित बैठा हुआ वह अग्नि को जला रहा है। उसका यह कठोर कार्य बहुत दिन से जारी है। तथापि वह यही समझ रहा है कि अभी तक उस वैर-भाव का काफी बदला नहीं हुआ। तुम्हारे कारण कुसुमायुध के शरो से अग्नि यहाँ तक पीड़ित हो गया है कि अपने भक्तों के द्वारा चढ़ाये गए कुसुमों से भी डर कर वह कोसों दूर भागता है।

सरोरुहो का सखा सूर्य जिससे पुत्रवान है और चन्दन के सुवास से सुगन्धित दक्षिण दिशा जिसकी प्रियतमा है उस वैवस्वत यम ने भी तुम्हारे निमित्त कामाग्नि-कुण्ड मे अपने धैर्य की आहुति दे डाली है। वह भी इस समय बड़ी ही विषमावस्था को प्राप्त है। शीतोपचार के लिए मलयाचल से लाये गये, कोमल पल्लव उसके शरीर-स्पर्श से यद्यपि बेतरह झुलस जाते हैं तथापि मलय इस आपत्तिकाल में भी अपने प्रभू यम की सेवा नहीं छोड़ता। कारण यह कि वह उसी दिशा का—उसी के राज्य

का वासी है। अतएव यम के शरीर के साथ मलयाद्रि भी अपने नवल-पल्लव और चन्दनादि जलाने का सन्ताप सहन कर रहा है।

रहा वरुण, सो उसकी भी दशा अच्छी नहीं। महासागर युगांयुग से बड़वाग्नि की ज्वाला सहन करता चला आ रहा है। वह उसे विशेष दाहक नहीं जान पड़ती। परन्तु अपने ही अंधि-पति वरुण का स्मराग्नि-सन्तप्त शरीर जल के भीतर धारण करने में वह इस समय असमर्थ हो रहा है।

ये चारो दवता तुम्हारे नगर के बाहर पास ही ठहरे हुए हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं तुम्हारी सेवा मे उपस्थित हुआ हूं। जो कुछ मैंने तुमसे निवेदन किया वह उन्हीं का संदेश है। अब कृपा करके बतलाओ कि उन्हे अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कब तक ठहरना पडेगा। उनके जीवन संशयापन्न हैं। अतएव जहाँ तक हो सके तुम्हे शीघ्रता करनी चाहिए। तुम प्रतिदिन इन देवताओं की पूजा, कमल के फूलो से, करती हो। परन्तु इस तरह को पूजा ये नही चाहते। वह इनको प्रीतिकर नहीं। तुम्हें प्रसन्न करने के लिए ये तो स्वयं ही अपना मस्तक तुम्हारे सामने झुका रहे हैं। अतएव अपने चरण-कमलों मे तुम इनकी पूजा करो; प्राकृतिक कमल-फूलों से नहो। अब क्या आज्ञा है?

नल के मुख से दिक्पालों का सन्देश सुनते समय दमयन्ती को भौंह टेढ़ी और आँखे लाल हो रही थीं। आँखे और भौंहो के विकार-विभ्रम से वह यह सूचित कर रही थी कि देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली अपनी अनिच्छा को साफ-साफ कह कर प्रकट करने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूं। यहाँ पर पाठक यह कह सकते है कि नल के सन्देश-वाक्य यदि भैमी को इतने अप्रिय मालूम होते थे तो उसने नल को बीच ही में क्यों न रोक दिया? क्यों उसकी सारी बातें वह अन्त तक सुनती रही?

इसका कारण यह न था कि दमयन्ती उस सन्देश को कोई गौरव की चीज समझती थी। नहीं, वह सन्देश उसकी दृष्टि में बिलकुल ही तुच्छ था। नल को जो उसने बीच ही में नहीं रोक दिया, इसका कारण यह था कि नल के सन्देश-कथन का ढंग बहुत ही अनोखा था। उसकी उक्तियाँ बड़ी ही मनोहारिणी थीं। उसकी वाणी बहुत ही रसवती थी। इसी से उक्ति-श्रवण के लोभ में पड़ कर, अन्त तक दमयन्ती उसकी बाते सुनती रही। सुना तो उसने सब, पर उसका कुछ भी असर उस पर न हुआ। नल के कथित सन्देश को बिलकुल ही अनसुना-सा करके उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

आप तो बड़े ही विचित्र जीव मालूम होते है। मैंने आपसे आपका नाम पूछा; आपका वंश पूछा; आपका स्थान पूछा। पर मेरे इन प्रश्नो का कुछ भी उत्तर न देकर, न मालूम, आपने क्या-क्या अनाप-शनाप कह डाला। मुझे अपने कई प्रश्नो का उत्तर आपसे पाना है। इस कारण, इस विषय में आप मेरे ऋणी हैं। क्या यह आपके लिए लज्जा की बात नहीं? अपना पहिला कर्ज न चुका कर, किस नैतिक नियम के अनुसार, आप मुझसे उत्तर के रूप में और कुछ चाहते हैं।

जिस तरह सरस्वती नदी की धारा कहीं दृश्य और कहीं अदृश्य है, ठीक उसी तरह का हाल आपकी मुखस्थ सरस्वती (वाणी) का भी है। आपकी बातो में स्पष्टता और अस्पष्टता दोनो का मिश्रण है। आपकी सुधा-सदृश बाते सुन कर मेरे श्रवण निःसन्देह कृतार्थ हो गये, तथापि आपका और आपके वंश का नाम सुनने के लिए वे अब तक उत्सुक हैं। उनकी यह उत्सुकता पूर्ववत् बनी हुई है। प्यासे की प्यास पानी ही से जा सकती है; घड़ों दूध अथवा सेरों शहद से नहीं। अतएव तब न सही अब, उनके इस औत्सुक्य को दूर करने की उदारता दिखाइए।

नल ने कहा—मैंने जो तुम्हारे उन दोनो प्रश्नो का उत्तर नहीं दिया वह इसलिए कि मैंने वैसा करना व्यर्थ समझा। उससे लाभ की कुछ भी सम्भावना नहीं। अच्छा वक्ता वही है जो मतलब की बात भी कह दे और अपने कथन को व्यर्थ बढ़ावे भी नहीं। मेरा नाम क्या है और मेरा जन्म किस वंश मे हुआ है—ये ऐसी बाते हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृत विषय से कुछ भी नहीं। हम दोनों इस समय एक दूसरे के सामने हैं। अतएव, जिस काम के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ उसका सम्पादन, बिना मेरा नाम-धाम बतलाये भी, अच्छी तरह हो सकता है। इस विषय की बात-चीत में, पारस्परिक सम्बोधन के लिए, केवल 'मैं' और 'तुम' यही दो सर्वनाम काफी हैं। अच्छा, कल्पना करो कि मेरा जन्म किसी बुरे वंश में हुआ है। इस दशा में उसका नामोल्लेख किस तरह उचित माना जा सकेगा? और, यदि मेरा वंश उज्ज्वल है, तो भी उसका नाम लेना मुझे उचित नहीं। क्योकि ऐसे वंश में जन्म पाकर भी मेरा यहाँ दूत बन कर आना अपने वंश की बहुत बड़ी विडम्बना है। इसी से इन बातों के विषय मे उदासीनता दिखा कर मैंने देवताओ का सन्देश तुम से कह सुनाया। तुम्हे भी यही उचित है कि अवान्तर बातों पर व्यर्थ विवाद न करके मेरे द्वारा लाये गये सन्देश ही का उत्तर देने के लिए तुम अपनी वाणी को प्रवृत्त करो। अच्छा, जाने दो। यदि तुम्हे इतना निर्बन्ध है तो दो शब्द कह कर मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण ही क्यों न कर दूं। लो सुन लो, मैं चन्द्रवंशी हूँ। अब तो तुम्हारा आग्रह सफल हो गया? नाम मैं अपना अपने ही मुंह से नहीं बतला सकता। भले आदमी अपना नाम अपने ही मुंह से नहीं लेते। क्या तुम नहीं जानती कि महात्माओ ने नियम ही ऐसा कर दिया है? लोक-निन्दा के डर से मै इस नियम का उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकता।

इस पर दमयन्ती ने कहा—यह सुन कर मुझे बड़ी खुशी हुई कि आप सुधांशुवंश के आभरण हैं। तथापि आपकी कुछ विशेष बातों के सम्बन्ध मे मेरा संशय अभी तक दूर नहीं हुआ। किसी-किसी विषय में तो आपने बड़ी बेढब वाग्मिता दिखाई और किसी-किसी मे बिलकुल ही मौनभाव धारण कर लिया। आपकी यह नीति मेरी समझ मे नही आई। जो कुछ मेरी समझ में अब तक आया है वह यह है कि आप वञ्चना करने मे बड़े चतुर हैं। प्रतारणा-विद्या आपकी खूब बढ़ी हुई है। अच्छी बात है। यदि आप अपना नाम बतला कर मेरे कानों को पीयूष-रस का पान न करावेंगे तो मैं भी आपके कथित-सन्देश का उत्तर न दूँगी। पर-पुरुष के साथ बाते करने का अधिकार कुल-कामिनियो को कहाँ? यह भी तो महात्माओं ही का बनाया हुआ नियम है। आप इसे जानते हैं या नही?

नल ने अपनी प्रियतमा दमयन्ती के इस उत्तर का हृदय से अभिनन्दन किया। मन ही मन उसने दमयन्ती के भाषण-चातुर्य्य की प्रशंसा की। दमयन्ती की कोटि-कल्पना सुन कर वह निरुत्तर हो गया। उसने मुस्कराकर सिर्फ यह कहा कि शहद को भी मात करने वाले, ऐसे मीठे, वचनो का प्रयोग तुम्हें, सचमुच ही, पर-पुरुष के विषय में करना उचित नहीं। पर दमयन्ती के लिए वह पर-पुरुष थोड़े ही था।

इसके अनन्तर नल ने बहुत गिड़गिड़ा कर इस तरह भाषण आरम्भ किया—

हाय! तुम मेरे इस इतने बड़े श्रम को विफल किये देती हो। चारों मे से किसी एक दिक्पाल को अपनी कृपा का पात्र नहीं बनातीं। अमृत-तुल्य रस के स्नान से पवित्र हुई अपनी ऐसी मधुरिमा-मय वाणी से तुम्हें देवताओं ही की उपासना करन

चाहिए। ऐसी रसवती वाणी से परिप्लुत उत्तर यदि तुम देवताओं के सन्देश का देतीं, तो मेरे मुँह से सुनाया जाने पर, वह देवताओं के सारे सन्ताप को एक क्षण मे दूर कर देता। तुम्हारे उत्तर की अपेक्षा में मुझे यहाँ पर जितना हो अधिक विलम्ब हो रहा है, रुष्ट हुआ रति-पति उतना ही अधिक देवताओं को अपने बाणों का निशाना बना रहा होगा। मेरा एक-एक क्षण यहाँ पर एक-एक कल्प के समान बीत रहा है। मुझे धिक्कार है। दूत का काम करना भी मुझे न आया। यह काम बड़ी ही जल्दी का था; परन्तु, हाय! इसमें व्यर्थ विलम्ब हो रहा है।

इतना कह कर राजा नल के चुप हो जाने पर परम विदुषी दमयन्ती ने मन ही मन उन देवताओं की मूर्खता पर अफसोस किया जिन्होने ऐसे सुन्दर पुरुष को स्त्री के पास दूत बना कर भेजा। उसने अपने मन में कहा कि जलों [ड़ो] के अधिपति, प्रेतो के राजा [यम], मरुत्वान् [वात-ग्रस्त], इन्द्र और उर्ध्वमुख अग्नि से और क्या उम्मेद की जा सकती है? जैसे वे स्वयं हैं वैसा ही दूत भी उनको मिला है। यह कह कर, और कुछ मुसकरा कर, नल को उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत हुई। वह बोली—

आपके साथ व्यर्थ परिहास करने बैठना मेरे लिए ढिठाई है। बार-बार निषेध-वाक्यों का प्रयोग करते जाना वाणी की विडम्बना है। और, आपकी बात का उत्तर न देना आपका अनादर करना है। इससे मुझे विवश हो कर, देवताओ के सन्देश का उत्तर देना पड़ता है। सुनिए—

मैं मनुष्य-जन्म के कलंक से कलंकित हूँ। अतएव बड़ा ही आश्चर्य है जो देवताओ के मुँह से मेरे विषय मे ऐसी बात निकली। हाँ मैं उनकी भक्त हूँ। इसीसे सम्भव है, दिगीश्वरों ने मुझ पर कृपा की हो। क्योंकि भक्त-वात्सल्य के कारण स्वामी

अपने सेवकों को भी कभी-कभी ऊँची से ऊँची कृपा का पात्र समझ लेते हैं। सुराङ्गनाओं के सम्पर्क से सुखी महेन्द्र की यह मनोवाञ्छा कदापि उचित नहीं। सैकड़ों हसनियो ने जिस सरोवर की शोभा को बढ़ाया है, वह यदि किसी अन्य तुच्छ जल-चारिणी चिड़िया की आकांक्षा करे तो उसकी ऐसी नीच आकांक्षा उसकी विडम्बना का कारण हुए बिना नहीं रह सकती। दिगीश्वर चाहे कुछ ही क्यो न कहे, उनकी बातें सुनने के लिए मैं बहरी बन रही हूं। मत्त गजराज के विषय में कुरङ्ग-कन्या क्या कभी अपना मन चलायमान कर सकती है? यदि करे तो उसका यह काम बहुत ही असंगत हो।

इतना कह कर दमयन्ती ने सिर नीचा कर लिया और चुप हो गई। उसका इशारा पाकर उसकी एक सहेली उसके पास गई। उसके कान मे दमयन्ती ने कुछ कहा। तब सहेली ने नल को सम्मुखीन करके इस प्रकार उत्तर दिया—

लज्जा और संकोच के कारण मेरी सखी दमयन्ती इस विषय में और कुछ नही कह सकती। मेरे हृदय के भीतर घुस कर जो कुछ उसने कहा है, उसे अब आप मेरे मुँह से सुन लीजिए।

इसने अपना चित्त, बहुत दिन हुए, निषध-नरेश को दे डाला है। यह उन्हीं की हो गई है। अतएव, जिस बात की इच्छा आप इसमे रखते हैं, उसे कर दिखाना तो दूर रहा, उसकी चिन्तना तक करते इसे डर लगता है। सती स्त्रियों की स्थिति बहुत ही नाजुक होती है। मृणाल-तन्तु की तरह, जरा-सा भी धक्का लगने से, वह टूट जाती है। वह यह कहती है कि स्वप्न में भी, मैंने नल को छोड कर और किसी के पाने की कभी इच्छा नहीं की। तुम्हारे ये चारो देवता तो सर्वज्ञ है। फिर ये अपनी समस्त-साक्षिणी बुद्धि से ही यह बात क्यो नही पूछ देखते? उन्हे सब कुछ ज्ञात है,

फिर ऐसा असंगत प्रस्ताव क्यों ? ये तो सदाचार-समुद्र के कर्ण-धार समझे जाते है। अतएव, मुझे पर-स्त्री जान कर भी किस तरह ये मेरे पाने की इच्छा करते हैं ? इनके मनमें तो इस प्रकार का विकार उत्पन्न ही न होना चाहिए। यह इनका केवल अनुग्रह है, जो मुझ मानुषी की प्राप्ति के ये इच्छुक है। परन्तु, यदि इन्हे मुझ पर अनुग्रह ही करना है, तो मुझे नल-प्रदान रूपी भिक्षा देकर ही ये मुझ पर अपना अनुग्रह प्रकट करें। ये ईश्वर हैं, इनमें सब कुछ दे डालने की सामर्थ्य है। अतएव मुझे यह भिक्षा देना इनके लिए कोई बड़ी बात नही। सुन लीजिए, मेरी सखी ने तो दृढ़तापूर्वक यह प्रतिज्ञा तक कर डाली है कि यदि नल ने मेरा पाणि-ग्रहण न किया तो मैं आग मे जल कर मर जाऊँगी, या फाँसी लगा कर प्राण छोड़ दूँगी, या जल मे डूब कर जान दे दूँगी। मै जीती रहने की नही। नल की अप्राप्ति मे, मै अपने शरीर को अपना शत्रु समझ कर उसके सर्वनाश द्वारा उसके शत्रु-भाव की समाप्ति किए बिना न रहूंगी। इस प्रतिज्ञा को आप अच्छी तरह याद रखिए। आत्म-हत्या करना बुरा है, यह वह जानती है। परन्तु सती-धर्म की यदि रक्षा न हो सके तो, आपत्ति काल में निषिद्ध आचरण करना भी अनुचित नही। राजमार्ग के कर्दम-मय हो जाने पर क्या समझदार आदमी अन्य मार्ग से नहीं आते-जाते ? मै स्त्री हूँ। दिक्पाल पुरुष हैं और वाग्मी भी हैं। इससे मै उनकी बातों का समुचित उत्तर देने मे समर्थ नही। आप मुझ पर कृपा करें तो बात बन जाय। मैंने सूत्ररूप मे जो कुछ आप से निवेदन किया है उस पर एक भाष्य की रचना कर के तब आप उसे देवताओ को सुनाइएगा। देखिए, काट-छाँट करके कहीं उसे आप और भी छोटा न कर दीजिएगा।

इस पर नल की विकलता की बाते सुनिए—

ये त्रिलोक वन्दनीय दिक्पाल तो तुम पर इतना प्रेम प्रकट

कर रहे हैं, पर तुम उनसे विमुख हो रही हो। यह पहेली मेरी समझ में नही आती। मुझे तो तुम्हारी बातें बड़ी ही कौतुक-पूर्ण मालूम होती है। क्या यह भी कहीं सुना गया है कि निधि किसी निर्धन के घर मे घुसने की चेष्टा करे और वह भीतर से किवाड़ बन्द कर के उसे बाहर निकाल दे? तुम्हारा व्यवहार इस समय ठीक इसी तरह का हो रहा है। यह जान कर कि तुम पर सुरेन्द्र का इतना अनुराग है, मै तुम्हें परम सौभाग्यवती समझता हूँ, और तुम्हारा हृदय से आदर करता हूँ। परन्तु तुम ऐसे सौभाग्यवर्द्धक व्यापार से पराङ्मुखी हो रही हो। चन्द्र-मुखी! यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। मर्त्यजन्म पाई हुई मानवी स्त्री अमरतत्व पाये हुये देवताओ को नहीं चाहती, यह बिलकुल ही नयी बात है, जिसे मै आज तुम्हारे मुख से सुन रहा हूँ। यह तुम्हारा दुराग्रह मात्र है। दुख की बात है जो सब प्रकार तुम्हारा हित चाहने वाला तुम्हारा पिता भी हमारे इस दुराग्रह दोष को दूर नही कर देता। तुम तो स्वयं भी समझदार हो—विदुषी कहलाती हो। अतएव महेन्द्र को छोड़ कर नल-प्राप्ति की अभिलाषा रखने में तुम्हे क्या लज्जा भी नहीं आती? सारे सुरों के अधीश्वर के मुकाबिले मे क्यों तुम य.कश्चित् नरेश्वर को अधिक अच्छा समझ रही हो? उसका इतना आदर क्यो? इसे भावी प्रबलता ही कहना चाहिए। देखो न इतना चौड़ा मुख छोड़ कर श्वासोच्छ्वास ने संकीर्ण-नासा की राह से आने जाने का श्रम उठाया है। यह भावी की बात नहीं तो और क्या है? दूसरे जन्म मे जिस सुर लोक की प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े ऋषि मुनि अपने शरीर को, तपस्यारूपी अग्नि मे हुत कर देते है, वही सुरलोक स्वयं ही तुम्हे इसी जन्म से, अपने यहाँ ले जाने के लिए उतावला हो रहा है! परन्तु तुम उसकी एक नही सुनती। तुम्हारी मूढ़ता की सीमा नहीं।

नल के न मिलने पर मर जाने का जो तुमने प्रण किया है; वह भी तुम्हारी मूर्खता ही का सूचक है। यदि तुम फाँसी लगा कर मर जाओगी तो प्राणोत्क्रमण के अनन्तर तुम्हें अवश्य ही कुछ समय तक, अन्तरिक्ष मे भ्रमण करना पड़ेगा और अन्तरिक्ष मे रहने वाले जीव समुदाय का स्वामी, जानती हो, कौन है ? वही इन्द्र उनका स्वामी है। वह तुम्हे वहाँ पाकर क्यो छोड़ने लगा। अतएव, इस दशा मे तुम्हे अवश्य ही उसकी होन। पड़ेगा यदि तुम आग मे जल कर शरीर त्याग करोगी तो अग्नि पर मानो तुम्हारी बड़ी ही दया होगी। चिरकाल से अनेकानेक प्रार्थनाएँ करने पर भी जो तुम इस समय उसके लिए दुर्लभ हो रही हो वही तुम स्वयं ही उसे प्राप्त हो जाओगी। बिना नल के यदि तुम जल मे डूब मरोगी तो फिर वरुण के सौभाग्य का कहना ही क्या है। तुम्हारे बहिर्गत प्राणों को हृदय मे धारण करके वह अवश्य ही कृतकृत्य हो जायगा। इन परिणामों के बचने के इरादे से सम्भव है, तुम और किसी उपाय का अवलम्बन करो। परन्तु वैसा करने से भी तुम्हारा परित्राण नहीं। क्योकि मृत्यु के उपरान्त तुम्हे निःस देह ही धर्मराज का अतिथि होना पड़ेगा। अतएव तुम्हारे सदृश प्रियतम अतिथि को स्वयमेव अपने घर आया पाकर वह अवश्य ही अपना परम सौभाग्य समझेगा।

तुम्हारी बाते सुन कर मुझे सन्देह हो रहा है कि इन्द्रादि देवताओ के विषय मे जो तुमने निषेध-सूचक वाक्य कहे है वे कही स्वीकार सूचक तो नही। अपनी वक्रोक्तियो से कहीं तुम मेरे अभिलषित अर्थ ही की पुष्टि तो नही कर रही ? तुम्हारे वचनो में वक्रता का होना सर्वथा स्वाभाविक भी है। क्योंकि विदग्ध-बालाओं के मुख से यदि व्यञ्जक वृत्ति से विभूषित वक्र वचन न निकलेगे तो निकलेगे किसके मुख से ? चतुरा स्त्रियों का मुख ही तो ध्वनि-प्रधान उक्तियो का आकार है।

भैमि ! तुम्हारे सरस्वती-रस के प्रवाह मे निमग्न हुआ मैं कब तक चक्कर खाया करूँ ? अपने संकोच-भाव को जरा कम करके साफ-साफ कह क्यो नहीं देतीं कि किस सुरोत्तम को तुम कृतार्थ करना चाहती हो। मेरी राय मे तो सहस्र-नेत्र सुरेन्द्र को छोड़ कर और कोई तुम्हारे योग्य वर नहीं। संभव है, क्षत्रिय-गोत्र में जन्म लेने के कारण अग्निदेव पर तुम अनुरक्त हो। इस दशा मे उस ओजस्वी देवता की प्राप्ति के लिए तुम्हारा मनोरथ-वती होना भी सर्वथा उचित है। मैं जानता हूँ कि तुम बड़ी ही धर्मशीला हो। अतएव तुमने धर्मराज को अपने चित्त का अतिथि बनाया हो, तो उसका भी मै अनुमोदन करता हूँ। योग्य से योग्य का संगम होना चाहिए। शिरिष-पुष्प के समान कोमल गात की होने के कारण यदि तुम सारे मृदुल पदार्थो के राजा वरुण को चाहती हो तो वही क्यो न तुम्हारा पणिग्रहण करे। निशा ने तो इसी निमित्त शीतांशु को अपना पति बनाया है। सुरपुर परित्याग करके लक्ष्मी-पति भगवान जिस रमणीक समुद्र में दिन-रात बिहार किया करते है, वहीं तुम भी वारीश्वर वरुण के साथ आनन्द से विहार कर सकती हो।

यद्यपि नल के इन बचनो मे दमयन्ती के देव-सम्बन्धी अनु-राग का मिथ्या आरोप था, अतएव वे सर्वथा विडम्बनीय थे, तथापि नल की उक्तियो को वह बड़े आदर की चीज समझती थी। इससे कान सहित अपने एक कपोल को हाथ पर रखे हुए दमयन्ती चुपचाप बैठी रही। खुले हुए कान से नल की उक्तियाँ मात्र उसने सुनी। दूसरे कान को हाथ से ढक कर देव-सम्बन्धी अपने अनुराग की बातें उसने अनसुनी कर दी।

बड़ी देर तक सिर नीचा किये हुए दमयन्ती सोचती रही। तदनन्तर लम्बी उसाँस लेकर वह इस प्रकार करुण वचन बोली—

तुमने मेरे और देवताओ के सम्बन्ध मे जो बाते कहीं उन्होने मेरे लिए तेज़ नोक वाली सुइयो का काम किया—मेरे पापी कानो को उन्होने छेद-सा डाला। अथवा यह कहना चाहिए कि उन्होंने मेरे प्राण ही निकाल लिये। कृतान्त के तो तुम दूत ही ठहरे। तुम से और क्या आशा की जा सकती है? तुमने मेरे विषय में जो मिथ्या सम्भावनाएँ की हैं, उनके अक्षर मेरे कानो मे असह्य वेदना उत्पन्न कर रहे हैं। इस कारण मैं, इस समय और कुछ कहने में समर्थ नहीं।

इसके अनन्तर विदर्भनन्दिनी दमयन्ती की प्रेरणा से उसकी सहेली नल के सम्मुख हुई। वह बोली—

मेरी सखी इस समय अपनी एक जिह्वा से लज्जारूपी देवी की आराधना कर रही है। अतएव उसे मौनव्रत धारण करना पड़ा है। उसकी दूसरी जिह्वा आप मुझे समझे और मुझ से मेरी सखी का उत्तर सुने। जो कुछ मै कहती हूं उसे आप मेरी सखी ही के मुख से निकले हुए वचन समझे।

कल ही स्वयंवर होने वाला है। उसमे निषाधनाथ नल के कण्ठ मे वरमाला पहिनाने का मैंने निश्चय कर लिया है। आज का दिन मेरे इस काम मे विघ्न डाल रहा है। क्योकि मेरे प्राण कल के पहिले ही निकल जाना चाहते हैं। उनके लिए एक दिन का विलम्ब भी दुंःसह हो रहा है। इसलिए आज आप यहीं ठहर जाइए तो मुझ पर बड़ी दया हो। आपका दर्शन कर के मैं इस एक दिन को किसी तरह बिताने की चेष्टा करूँगी। कारण यह है कि उस हंस ने अपने नखो से मेरे प्राणाधार का जो चित्र बनाया था वह तुमसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इसमे तुम्हारा भी फायदा है। तुम्हारी ऑखे तुम्हारे मुख की शोभा देखने में असमर्थ हैं। ब्रह्मा ने उन्हे उस शोभा-विलोकन से वंचित रक्खा है। अपना मुँह अपनी ही आँखों से नहीं देख पड़ता। यदि आप

आज ठहर जायँगे तो कल अपनी मुख-शोभा को नल के मुख-मंडल पर देख कर, आपकी भी आँखे अपना जन्म सफल कर लेंगी। मैं हाथ जोड़ती हूं दिगीश्वरों के लिए अब फिर याचना करके मुझे आप तङ्ग न करे। फिर वैसे शब्द आपके मुँह से न निकलें। देखिए, मेरी आँखे बेतरह अश्रु-पूर्ण हो आई हैं।

प्रियतमा दमयन्ती की ऐसी पीयूषपूर्ण वाणी सुन कर नल ने अपने आपको बहुत धिक्कारा। दमयन्ती ने तो उसे कृतान्त-दूत ही बनाया था। उसने अपने आपको महानिष्ठुर कृतान्त ही समझा। दमयन्ती की करुणोक्तियाँ सुन कर नल का हृदय यद्यपि विदीर्ण हो गया, तथापि उसने, इतने पर भी अपने दूत-धर्म से च्युत होना उचित नहीं समझा। भीतर ही भीतर ठण्डी साँस लेकर धीरे-धीरे उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

सुरेश्वर इन्द्र के घर ही में कल्पवृक्ष है। उस पर इन्द्र ही का सर्वतोभाव से अधिकार है। यदि उससे इन्द्र यह याञ्चा करे कि तुम मेरे लिए दमयन्ती को ला दो, तो किस तरह तुम इन्द्र की जीवितेश्वरी होने से बच सकोगी? कल्पपादप से की गई याञ्चा कदापि व्यर्थ नहीं जाती। यदि तुम्हारे पाने की कामना से सर्वकामिक यज्ञ करे और अपनी ही आहवनीयादि मूर्त्तियों में हविष्य करना आरम्भ कर दे तो क्या होगा? इस तरह की वैदिक विधि मिथ्या नहीं हो सकती। तो तुम्हें अग्नि की प्राणेश्वरी होना ही पड़ेगा। दक्षिण दिशा में धर्म्मराज ही का अखण्ड राज्य है, उसी के राज्य में अगस्त्यमुनि रहते हैं। यदि उनसे धर्म्मराज यह कह दे कि इस दफे मैं तुम से धन-धान्यरूपी अपना षष्ठांश कर नहीं चाहता। उसके बदले तुम दमयन्ती को ला दो तो तुम्हारी क्या दशा होगी? वरुण के आश्रम में, यज्ञ के लिए सैकड़ो कामधेनु गायें बँधी रहती हैं। यदि वह उनमें से एक से भी तुम को पाने की याचना कर बैठे, तो तुम्हें उसके हस्तगत

होने में कितनी देर लग सकती है ? क्षण भर के लिए मान लो कि यह कुछ न हो। न सही। अच्छा यदि नल के साथ तुम्हारा पाणि-ग्रहण संस्कार होने के पहले यमराज तुम्हारे यहाँ नल के किसी कुटुम्बी का प्राणापहरण करके घर मे सूतक कर दे तो ! साक्षी-करण समय में अग्नि यदि प्रज्वलित होने से इन्कार कर दे तो !! कन्या-दान के समय वरुण यदि जल की धारा रोक दे तो !!! बिना इन्द्राणी के सानिध्य के स्वयंवर निर्विघ्न नही समाप्त हो सकता। अतएव यदि पति की आज्ञा से शची तुम्हारे स्वयंवर मे न आवे और उपस्थित राजो मे विघ्न-रूप युद्ध छिड़ जाय तो !!! दमयन्ती ! सोच-समझ कर काम करो, हठ और दुराग्रह अच्छा नहीं। मूर्खता छोड़ो। मैने जो कुछ कहा उसी में तुम्हारा परम हित है। विघ्न करने के लिए देवताओ के उतारू होने पर किस की सामर्थ्य है जो वह हथेली पर रक्खी हुई चीज़ पर भी अपना अधिकार जमा सके ?

नल की इन बातो को दमयन्ती ने अक्षर-अक्षर सच समझा। उसे विश्वास हो गया है कि अब नल की प्राप्ति असम्भव है। निराशा ने उसे अभिभूति कर दिया। उसके नेत्र पर सावन भादो की जैसी घन-घटा छा गई। उसका सारा धैर्य्य जाता रहा। वह महाविकल और विह्वल हो उठी। ऑखो से ऑसुओ की झड़ी लग गई वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। उसे मतिभ्रम-सा हो गया। कुछ होश मे आने पर उसने विलाप आरम्भ किया—

दूसरो के अभिलषित फल के खा जाने का व्रत धारण करने वाले रे पापी दैव ! तू अब कृतार्थ हो। मेरे निष्फल प्राणो के पात के साथ ही तू भी पतित हो जा। स्त्री हत्या का पाप अब सिर पर ले। वियोग-वह्नि से अत्यन्त तप्त हुए हृदय ! तू किस चीज का बना है ? इस्पात का तो तू है नही ? यदि होता तो इतना ताप सहने पर अवश्य ही गल जाता। वज्र भी तू नहीं, क्योंकि पञ्च

शर के शरों से तू बेतरह छिदा हुआ है। और, वज्र में छेद हो नहीं सकते। अतएव, कहता क्यो नही, कि क्यो तू फट कर दो टुकड़े नहीं हो जाता? हे जीवित! शीघ्र ही तुम यहाँ से पलायन करो। मेरा हृदय ही तुम्हारा घर है और वहाँ आग लग गई है—वह जल रहा है। सुख की व्यर्थ आशा को तुम अब तक नही छोड़ते! धिक्कार है, तुम्हारी इस मूर्खता और तुम्हारे अपूर्व आलस्य को!!!

रे मन! जिस प्रिय वस्तु को तू चाहता था, उसके मिलने की जब आशा न रही तब तू मौत माँगने लगा। पर वह भी तुझे नहीं मिलती - न वह वस्तु ही मिलती है, न मौत ही मिलती है। जो कुछ तू चाहता है वही तेरे लिए अप्राप्य हो जाता है - इससे तू वियोग ही क्यो नहीं माँगता? मुझे यह इच्छा करनी चाहिए कि प्रियतम से मेरा वियोग हो जाय। परन्तु हाय! अब वह भी सम्भव नहीं। इस समय एक-एक क्षण मेरे लिए एक-एक युग हो रहा है। कब तक मुझे ये यातनाये सहनी पड़ेगीं? माँगने से मृत्यु भी नहीं मिलती। इधर मेरा अभिलषित कान्त मेरे हृदय को नहीं छोड़ता, उधर उसे मेरा मन नहीं छोड़ता, और, मन को भी मेरे प्राण नहीं छोड़ते। हाय-हाय, कैसी दुःख परम्परा है।

हे देववर्ग, जिसके एक ही कण मे मेरे उग्र से उग्र सन्ताप का संहार हो सकता है:वह तुम्हारा दयासागर किसने पी लिया? क्या वह इस समय बिलकुल ही सूख गया है? यदि तुम मन में जरा भी इच्छा करो तो अपने एक ही संकल्प-कण से तुम मुझसे भी उत्तम और कोई नारी-रत्न अपने लिए प्राप्त कर सकते हो। मै सर्वथा तुम्हारी अनुकम्पनीय हूं। अतएव मुझ पर तुम्हें इतना जुल्म न करना चाहिए। हे नैषध! मैं जी-जान से तुम पर अनुरक्त हूँ। तुम्हारे कारण, इस समय, मुझ पर जो बीत रही है—जो यंत्रणा

मैं भोग रही हूँ—उसकी खबर किस तरह मैं तुम तक पहुँचाऊँ। ब्रह्मा ने उस पक्षी को भी, न मालूम, कहाँ छिपा दिया। एक-एक सरोवर उसके लिए ढूँढ़ डाला गया। पर, कहीं पता न चला। यदि वह मिल जाता, तो मेरी इस दुर्गति का समाचार तो तुम्हे ज्ञात हो जाता। मेरा मन एकमात्र तुम्हारे ही चरण-कमलो मे लीन है। क्या इस बात को तुम नही जानते ? और यदि जानते हो तो तुम्हे मुझ पर दया क्या नहीं आती ? दयाधनो को इतनी निठुराई शोभा नही देती। अथवा इसमे तुम्हारा कुछ भी अपराध नही। दैव जो चाहे करे। वह ज्ञानियों को भी विचारान्ध कर देता है। खैर। मेरी मृत्यु अब अनिवार्य है। मेरा प्राणान्त हो जाने पर कभी न कभी तो तुम्हारे कान मे यह भनक अवश्य ही पड़ेगी कि दमयन्ती ने मेरे लिए प्राण दे दिये। अच्छा, नाथ। इस समय मुझ पर दया नहीं आई तो न सही। मेरा मृत्यु समाचार पाने पर ही मुझ पर कुछ दया दिखाने का अनुग्रह करना। मैंने सुना है कि तुम बड़े दानी हो—तुम याचको के कल्पद्रुम हो। इसमे मै भी तुमसे एक छोटी-सी याचना करती हूँ। हे प्राणाधिक! मेरा हृदय अब विदीर्ण होने ही पर है। उसके दो टुकड़े हो जाने पर, जिस रास्ते मेरे प्राण निकलेगे उसी रास्ते, उन्ही के साथ, कहीं तुम भी न निकल खड़े हो जाना!

पत्थर को भी पिघलाने वाला दमयन्ती का ऐसा विलाप सुन कर नल को आत्म-विस्मृति हो गई। उन्माद-ग्रस्त मनुष्य की जो दशा होती है वही दशा उसकी भी हो गई। इस दशा को प्राप्त होने पर वह अपने दूत-भाव को बिलकुल ही भूल गया। अज्ञानावस्था में वह इस तरह की प्रलाप-पूर्ण बाते कहने लगा—

प्रिये ! तू किसके लिए इतना विलाप कर रही है ? अपने मुख को अश्रुधारा से क्यो वृथा धो रही है ? यह नल तो तेरे सामने ही, तुझे प्रणाम करता हुआ, खड़ा है। तिर्यक नेत्रों के

विलास से क्या तूने उसे नहीं देखा ? लीला कमल को हाथ में लेने के बदले अपने मुख को क्यों तूने उस पर रख छोड़ा है। मुख को लीला-कमल बनाने का कारण क्या ? तेरे नेत्रों से बहने वाले अमङ्गल अश्रुओं को ला, मैं अपने हाथ से पोंछ दूँ। ला, मैं अपने मस्तक से तेरे पद पङ्कजों की रेणुका का क्षालन करके उसके साथ ही अपने अपराधों का क्षालन करा लूँ। प्रिये! यदि तू मेरा आदर-सत्कार करके मुझ पर अनुग्रह नहीं करना चाहती तो न कर। पर मैं तेरे सामने सिर झुकाए खड़ा हूँ। इससे मेरा प्रणाम तो तुझे स्वीकार ही कर लेना चाहिए। यह तो कोई बड़े परिश्रम का काम नहीं। याचकों के लिए तो तू कल्पवृक्ष हो रही है, पर मेरी तरफ एक बार अच्छी तरह देखती भी नहीं मुझे दृष्टिदान तक नहीं देती ! मुझसे इतनी कंजूसी क्यों ? आँखों से आँसुओं की झड़ी बन्द कर; मन्द मुसकान रूपी कौमुदी को फैलने दे; मुख-कमल को विकसित होने दे; नेत्र खञ्जरीटों को यथेच्छ विहार करने दे। बोल-बोल। अपनी मधुमयी वाणी सुनाकर मेरे मुरझाए हुए हृदय-पुष्प को फिर प्रफुल्लित कर दे। चन्द्रमा की निशा-नारी के समान तू ही नल की एक मात्र प्राणाधार है।

इतना कह चुकने पर नल का उन्माद अकस्मात् जाता रहा। उसे होश आगया। यह जान कर कि जो बातें मुझे न कहनी थीं वे भी मैंने कह डाली, उसे घोर परिताप हुआ। वह बोला—

हाय ! मुझे क्या हो गया। क्यों मैंने इस तरह अपने को प्रकट कर दिया ? इन्द्र मुझे अब क्या कहेगा ? उसके सामने तो अब मैं मुँह दिखलाने लायक भी न रहा ! अपना नाम अपने मुँह से बतला कर मैंने दिगीश्वरों का काम मिट्टी में मिला दिया। हनूमान आदि के उपार्जित यश से जो दूत पथ इतना

प्रशस्त हो रहा था उसमें मैंने काँटे बखेर दिये। ईश्वर तू मेरा साक्षी है, जान बूझ कर मैंने ऐसा नही किया। हाय मेरी छाती लज्जा से फट क्यो नही जाती? यदि फट जाती तो देवताओ को मेरी हृदय-शुद्धि का ज्ञान तो हो जाता। खैर, देवता तो सर्वज्ञ हैं। सच क्या है वह जान लेगे। पर सांसारिक जनो के मुँह पर कौन हाथ रखता फिरेगा ? लोकनिन्दा से मेरी किसी तरह रक्षा नहीं।

बड़ी देर तक नल को इस तरह विलाप करते और सिर धुनते देख उस दिव्य हंस को उस पर दया आई। वह अचानक वहां आकर उपस्थित हो गया। उसने नल को समझा-बुझा कर शान्त कर दिया। उसने कहा—

बस, बहुत हो चुका। और अधिक दयमन्ती को पीड़ित न कीजिए। निर्दयता छोड़िए। इसको स्वीकार कीजिए। अधिक निराश करने से यह अवश्य ही अपनी जान दे देगी? आपने अपने आपको जान-बूझ कर प्रकाशित नहीं किया। इसमें आपका कोई अपराध नही। देवता आप पर कदापि अप्रसन्न न होगे। वे आपके हृदय की शुद्धता को अच्छी तरह जानते हैं। यह कह कर वह हंस जब वहां से उड़ गया तब उन चारो दिक्पाल-देवताओ को प्रणाम करके नल दयमन्ती से इस प्रकार मधुर वाणी बोला—

देवताओं में अनुराग उत्पन्न करने की व्यर्थ चेष्टा करके मैंने तुम्हारी बहुत कदर्थना की। परन्तु इसमें मेरा कुछ दोष नहीं। मैं सर्वथा निरपराध हूं। मैंने निष्कपट भाव से देवताओं की दूतता की है यही मेरा धर्म था। धर्म-पथ से डिगना मैं मृत्यु से भी भयंकर समझता हूं। अब वे चाहे मुझ पर इस कार्य के उपलक्ष में दया दिखावें, चाहें मुझे अपराधी समझ कर दण्ड दें। मुझे कुछ नहीं कहना। देवता तो तुम पर हृदय से अनुरक्त हैं, पर

तुम मुझ को अपना दास बनाने का आग्रह कर रही हो। यह बड़े ही असमञ्जस की बात है। खैर जो कुछ करना, बहुत सोच समझ कर करना। ऐसा न हो कि तुम्हें पीछे पश्चात्ताप करना पड़े। मेरी इस सलाह को तुम पक्षपात-दूषित मत समझो। यह सलाह मैं देवताओं के डर से नहीं दे रहा और न इसलिए दे रहा कि तुम में मेरा अनुराग ही कम है। नहीं, बात ऐसी नहीं। मैं पक्षपात रहित होकर तुम्हारे हित की आकांक्षा से ही ऐसी सलाह देने को बाध्य हुआ हूँ। मैं अपनी दशा का तुम से क्या वर्णन करूँ! तुम्हारे हित के लिए—तुम से उऋण होने के लिए यदि मुझे अपने प्राण भी दे देने पड़े तो भी मैं सुख पूर्वक उनका समर्पण करने को तैयार हूं। तुमने मुझपर जो कृपा की हैं उसके बदले में यदि मेरे प्राण भी तुम्हारे किसी काम आसकें, तो उनके दान से भी मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

नल की इस पीयूष वर्षिणी वाणी को सुन कर दयमन्ती को परमानन्द हुआ। नल को पर-पुरुष समझ कर, उसके सामने बातें करने के कारण, उसके हृदय मे जो घृणा और आत्म-निन्द-भाव उदित हुआ था, वह सब जाता रहा। परन्तु नल के सामने तद्विषयक अपने अनुराग आदि को प्रकट करने के कारण उसे बेतरह सङ्कोच हुआ। वह लज्जा से अभिभूत हो उठी। उसके मुँह से फिर एक भी शब्द न निकला! उसकी यह दशा देखकर उसकी सहेली अपना कान उसके मुँह के पास ले गई। परन्तु तब उसकी सहेली ने मुसकरा कर नल से कहा—सरकार प्रियतमा पर लज्जा ने यहां तक अपना अधिकार जमा लिया है कि अब वह आपके सम्मुख अपने मुख से एक अक्षर तक भी निकालने में समर्थ नहीं। उसके मौन-धारण का और कोई कारण नहीं, कारण केवल लज्जा है। अतएव आप उस पर अप्रसन्न न

हूजियेगा। कहीं आप उस पर यह इलजाम लगाने की चेष्टा न कीजियेगा कि यह तो बोलती नहीं—इसने जो कुछ पहले कहा था सब बनावटी था। नहीं ऐसा नहीं है। यह कह कर उसने दमयन्ती की नल-सम्बन्धिनी वे सब बातें कह सुनाई, जो उसने नल-प्राप्ति की कामना से, समय-समय पर कही थी। उनसे सिद्ध किया कि नल पर दमयन्ती का स्नेह कितना प्रगाढ़ है।

इस प्रकार भीमात्मजा दमयन्ती की सारी रहस्य पूर्ण बातें सुन कर, अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हुए, नल ने वहाँ से प्रस्थान किया। दमयन्ती के महल से चल कर नल शीघ्र ही पूर्वोक्त दिक्पालों के सामने उपस्थित हुआ और उसने अपने दूतत्व की सारी बातें यथातथ्य कह सुनाई। सुन कर देवताओं के चेहरों का रङ्ग फीका पड़ गया।

प्रातःकाल वे सब दमयन्ती के स्वयंवर में पहुँचे। अपने कौटिल्य का जाल बिछाने मे उन्होंने वहां भी कसर न की। उन्होंने विषम विघ्न उपस्थित कर दिया। नल का रूप धारण करके वे वहाँ जा बैठे! परन्तु अपने सतीव्रत के बल से उन विघ्न-बाधाओं को पार कर के दमयन्ती ने अन्त मे नल के कण्ठ मे वरण-माल्य पहना ही दिया। अपनी भक्ति से उसने उन देवताओं को यहाँ तक प्रसन्न कर लिया कि नल को उसकी वकालत का मिहनताना भी, वर-प्रदान के रूप मे देना पड़ा।

❀ समाप्त ❀

टिप्पणियाँ

पृष्ठ १०—समीक्षा = अच्छे प्रकार से आलोचना (सम + ईशा) । पराकाष्ठा = अन्तिम सीमा । काव्यकक्षा = काव्य कोटि । वृत्त = छंद ।

पृष्ठ ११—गले में डाली...है = कमर के आभूषण को गले में पहिनने वाले की जिस प्रकार मूर्खता प्रकट होती है, उसी प्रकार छंद रूपी हार के अनुचित प्रयोग से कवि की ।

पृष्ठ १३—अपरिमेय = जिसकी नाप न की जा सके ।

पृष्ठ १४—दोषोद्भावनाएं = बुराइयों की कल्पना । आकलन = विचार, पाठ ।

पृष्ठ १५—रसायन = भिन्न-भिन्न धातुओं को फूँक कर बनाई हुई मूल्यवान और औषधि विशेष । अक्षर-मैत्री = परस्पर मेल खाने वाले अक्षरों को विचार ।

पृष्ठ १६—सार्वदेशिक = सारे देश से सम्बन्ध रखने वाला ।

पृष्ठ १७—अर्थ सौरस्य = अर्थ की मधुरता एवं रस-पूर्णता । तादात्म्य = तन्मय हो जाना, तल्लीनता । आह्लादकारक = प्रसन्नता देने वाला । व्यञ्जक = सूचक ।

पृष्ठ १८—तन्वी ' है = सुकुमार तथा दुर्बल होते हुए विरहव्यथा को सहन करना विशेषता का सूचक है ।

पृष्ठ १९—व्यापार = कार्य । शब्द शास्त्र ' भी = व्याकरण से शुद्ध होते हुए भी । अभिषेक = जिस प्रकार बिना तिलकोत्सव के कोई भी राजा नहीं कहला सकता उसी प्रकार बिना रस के कोई काव्य काव्याधिराज नहीं बन सकता । काव्याधिराज = काव्यों का राजा अर्थात् श्रेष्ठ काव्य । परकीया = पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली नायिका । स्वकीया ' बुझाना = विवाहित तथा पति में अनुरक्ता

नायिका के 'आगतपतिका' 'प्रवत्स्यत्पतिका' आदि भेद करना। हाव= मनोविकारों के सूचक कटाक्ष आदि।

पृष्ठ २०—हेला भाव= अभिलाषा, कटाक्ष आदि का अत्यन्त स्पष्टरूप।

पृष्ठ २१—अवहेलना= उपेक्षा, तिरस्कार।

पृष्ठ २२—सुवर्ण= सुवर्ण, शब्द।

पृष्ठ २३—धर्मसंस्थापनार्थाय'= धर्म को स्थिर बनाने के लिए (गीता में कृष्णजी ने यह कहा है कि मैं धर्म की स्थापना के लिए अवतार लेता हूँ। वहीं का यह पद है)।

पृष्ठ २६—संक्रान्ति= एक स्थान से दूसरे पर जाना। परोक्ष रूप से= उपदेश खुला होने से काव्य का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

पृष्ठ २८—सापेक्ष= (यहाँ आवश्यक)। कविताकुबेर= (व्यंग्योक्ति) कुबेर देवताओं का कोषाध्यक्ष है। अत वह सबसे अधिक धनी माना जाता है, कविता कुबेर से भाव (व्यंग्य से) तुकड़ कवि से है।

पृष्ठ २६—हस्तामलकवत= हथेली पर स्थित आमले के समान अर्थात् प्रत्यक्ष एवं पूर्ण रूप से ज्ञात। कुट्टिनी= व्यभिचारिणी स्त्री।

पृष्ठ ३०—दिव्य= दैवी। पौरुषेय—मनुष्य सम्बन्धी। क्रिया मातृ का मंत्र= सरस्वती देवी को प्रसन्न करनेवाला मंत्र। कष्टच्छ्रसाध्य= कठिनाई से ठीक होने वाला।

पृष्ठ ३१—अभिनन्दन= प्रशंसा। उग्र-सन्धि= वहस, खंडन मंडन आदि।

पृष्ठ ३२—प्राप्तकवित्वशक्ति= जिसे कविता करने की शक्ति प्राप्त हो गई हो।

पृष्ठ ३३—याञ्चा= कुछ माँगने की प्रार्थना।

पृष्ठ ३५—महायात्रा= मृत्यु। पंचक= धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र जिनमें कोई नया काम करना वर्जित है।

पृष्ठ ३७—कण्ठाभरण= क्षेमेन्द्रकृत 'कविकंठाभरण' नामक पुस्तक; गले का आभूषण।

पृष्ठ ३६—दीवान = गजलों का संग्रह। इस्तेदाद = योग्यता

पृष्ठ ४३—अभावोक्तियाँ = असम्भव तथा बेसिर पैर की बातें।

पृष्ठ ४६—अपरिहार्य = आवश्यक। काफिया = अन्त्यानुप्रास, तुक। वजन = छन्द की गति।

पृष्ठ ४६—आलंकारिक = अलंकार शास्त्र के ज्ञाता।

पृष्ठ ५०—व्युत्पत्ति = शास्त्रीय योग्यता। मुशाहिदा = प्रत्यक्ष देखना।

पृष्ठ ५१—उपोद्‌घात = भूमिका

पृष्ठ ५३—ध्वनि = व्यंग्यार्थ।

पृष्ठ ५४—एक मात्र' ' 'है—जिन कवियों में केवल शब्दाडम्बर का ही गुण है।

पृष्ठ ५६—अनुधावन = अनुकरण।

पृष्ठ ५८—अन्त करण की वृत्तियाँ = हृदय के भाव। शब्दात्मक मनोभाव = शब्दों में प्रकट हृदय के भाव।

पृष्ठ ५६—समञ्जस = समझदार।

पृष्ठ ६०—तरणि = सूर्य। ताते = गरम। साथरी = बिछौवन तुराई = तोशक। राखि अवध' ' ' ' ' 'प्रान—यदि आप मुझे अवधि तक (१४ वर्ष) अयोध्या को छोड़ जायँगे तो मेरी मृत्यु ही समझिये। पाठान्तर—राखिए अवध जो अवधि लगि रहते जानिये प्रान' = यदि आप मेरे प्राणों को अवधि तक रह सकने योग्य समझते हों तो मुझे यहाँ छोड़ जाइए। सम महि = इकसार जगह। पलोटिहि = दबावेंगी। तुमहिं उचित' ' 'भोगू—(काकूक्ति) अर्थात् आपके लिए तप करना और मेरे लिए ऐश्वर्य भोगना कहाँ तक उचित है।

पृष्ठ ६२—उद्दीप्त = तीव्र। उपरति = वैराग्य, संसार से विरक्ति।

पृष्ठ ६३—पर्यवसान = अन्त (लक्ष्य)। उसका अच्छी' ' ' ' ' 'चाहिए = तात्पर्य यह है कि तर्क को छोड़ने से ही कविता का स्वाद मिलता है।

पृष्ठ ६४—रसाल = सरस तथा मधुर। सत्कृत्य' ' ' ' ' 'करना =

अच्छे कामो में समय का उपयोग करना यह स्वाभाविक ····है= आनन्द तथा उपयोग के लिए कविता करना मनुष्य का स्वभाव है।

पृष्ठ ६५—राजाश्रय=राजाओं का सहारा। अज्ञात यौवना=वह नायिका जिसको अपने युवतीपन का ज्ञान नहीं। विंट=धूर्त वेश्या-प्रेमी। चेटक=दूत एवं सेवक ।

पृष्ठ ६६—नवोढ़ा=नव विवाहिता नायिका। पुरुषायित सम्बन्ध= पुरुष रूप होकर रति करना (विपरीत रति)। भेदभक्ति=नायिका भेद वर्णन करने की रुचि।

पृष्ठ ६७—खण्डिता=वह नायिका जिसका पति अन्य स्त्री के पास रह कर लौटे। सुरतान्त=रति के उपरान्त। ज्ञात यौवना=वह नायिका जिसे अपने युवती होने का ज्ञान हो गया हो। विपरीत रति=स्त्री का पुरुषवत् रति क्रीड़ा मे प्रवृत्त होना । उद्वेगजनक=ग्लानि उत्पन्न करने वाला। प्राचुर्य=अधिकता। अवलम्बन=मूल आधार।

पृष्ठ ६८—सामान्या नायिका=गणिका।

पृष्ठ ६९—चकार निकाला=कुछ भी विरोध न किया, चूँ भी न की। कूजित के मिष=मीठे वचनों के बहाने से।

पृष्ठ ७०—वासकसज्जा=वस्त्रादि से विभूषित होकर पति की प्रतीक्षा करने वाली नायिका। बिप्रलब्धा=संकेत करके भी प्रिय जिसके पास न आवे। कलहान्तरिता=पति से लड़कर पछताने वाली नायिका। दक्षिण=वह नायक जो सब को संतुष्ट रखता हुआ एक साथ कई स्त्रियों से प्रेम करता है। अनुकूल=एक ही नायिका में अनुरक्त नायक। धृष्ट= वह नायक जो झिड़कियाँ खाकर भी लज्जित नहीं होता। शठ=वह नायक जो दिखावटी प्रेम से स्त्रियों को धोखा देता है। आह्वान=पुकारना। नववयस्क मुग्धमति युवाजन=नवयुवक जो स्वभाव से ही सासारिक ज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं। चेष्टा वैलक्षण्य=हाव-भावों के भेद और उनकी विशेषता।

पृष्ठ ७१—सम्मोहन शर=मोहित करने के लिए प्रयुक्त बाण। अलक्षित

वाणी = जिसके कहने वाला दिखाई नहीं देता। आकर्णकृष्ट = कानों तक खींचा हुआ।

पृष्ठ ७३ – आविर्भाव = उत्पत्ति। भावनाएँ = कल्पनाएँ।

पृष्ठ ७४ – किन्नरी = एक देवयोनि विशेष की स्त्री। अनन्य-साधारण = अनुपम।

पृष्ठ ७५—स्तम्भित = आश्चर्यचकित। कामेश्वर शास्त्री = कामदेव। अथवा काम शास्त्र में प्रवीण कल्पित शास्त्री का नाम।

पृष्ठ ७६—तिलोत्तमा, सुलोचना आदि अप्सरायें हैं। विभ्रम = विलास; हाव-भाव। निष्प्रभ = शोभाहीन। प्राङ्गण = आँगन। क्रीड़ाहंस = मन बहलाव के लिए पाला हुआ हंस।

पृष्ठ ७७—लवलीलता = नेवाड़ी। हरिणशावक = हिरन का छोटा बच्चा। अतर्कित..............पियराई = वह पीलापन जिसके लिये कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

पृष्ठ ७८—चित्र-फलक = तस्वीर खींचने का पट या तख्ता। त्रिलोकी-तिलक = तीनो लोकों मे श्रेष्ठ। उशीर = खस। पर ऐसा ....हैं = परन्तु मुँह नीचा करने से हृदयस्थित आभूषणों में चन्द्रमा की परछाहीं दीख पड़ती-है। कङ्कणों के.........सकेगी = हाथ के आभूषण गिर तो दमयन्ती की क्षीणता के कारण रहे हैं, परन्तु कवि की उत्प्रेक्षा है कि मानों दमयन्ती को अपना भार सहने योग्य न समझ कर स्वयं ही चले जारहे हैं।

पृष्ठ ७९—चन्दनचर्चित मणिमंडित = चन्दन तथा मणि आदि शीतल पदार्थों से युक्त। मरीची = किरण। उपचार = इलाज। मार्तण्ड = सूर्य। तब यदि ....बात है = जब देवता तक तेरा ध्यान करते हैं तो फिर एक मनुष्य को, जिसको तू स्वयं चाहे, तुझे न प्राप्त होना आश्चर्य ही का विषय है। कालिदास ने भी ऐसा ही कहा है—

"कमला मिलै कि ना मिलै ताहि चहत जो कोइ।
पै जाको कमला चहै सो दुर्लभ क्यों होइ॥"

(शाकुन्तला)

पृष्ठ ८०—चन्द्रमौलि = शिवजी (चन्द्रमा जिनके मस्तक मे है)। रागान्ध = प्रेम मे अन्धा । गतागत = आना-जाना, घूमना । स्पर्द्धा = ईर्ष्या। विलासिनी = स्त्री। पाणिपीडन = विवाह । वैमानिक = विमान उठाने वाला । मधु = वसन्त । माधवी = बासन्ती नाम की लता ।

पृष्ठ ८१ = कम्बुकण्ठ = शंख के समान सुडौल गरदन। हृदयवृत्ति = हृदय का भाव (यहा प्रेम) । मुक्तालता = हार । कंटकित = पुलकित । पंचशायक = कामदेव । उन्मज्जित = बाहर निकला, उठा । निर्व्याज = स्वार्थ और छल से रहित । चिन्तामणि = वह स्वर्गीय मणि जो विचारे हुए पदार्थ को दे देती है । सायन्तनी = संध्या के समय की ।

पृष्ठ ८२–नीर-क्षीर-विवेक = दूध और पानी को अलग-अलग करने का ज्ञान

पृष्ठ ८३ – प्रवाद = अफवाह । जागरूक = जगी हुई, तीव्र ।

पृष्ठ ८७ – बिस = कमलनाल । जलरूह = जल में उत्पन्न होने वाले कमलादि ।

पृष्ठ ८६ – उच्छृङ्खल = निरंकुश, मनमानी करने वाले । क्रौंच = हंस के समान एक पक्षी विशेष । मानिषाद = आदि कवि वाल्मीकि के मुख से करुणावश निकला हुआ सर्व प्रथम श्लोक जिसका भाव है कि हे निषाद (भील) कामोन्मत्त इस क्रौंच के जोड़े में से एक को तूने क्यों मारा, ऐसा करने से तेरी प्रतिष्ठा हमेशा को चली जायगी । सरस्वती = वाणी । विधुरा = दुखी, वियोगिनी। अल्पादल्पतरा समवेदना = थोडी-सी भी सहानुभूति

पृष्ठ ६० — गेय तथा आलेख्य = गाने और लिखे जाने योग्य । पक्षपात-कार्पण्य = सहानुभूति की कमी । श्रुतिसुखद = सुनने मे मधुर । शीतातप = ठण्ड और धूप । भवतु नाम = अस्तु जो कुछ हो । हा हत विधि ··· सि = हाय दुर्भागनी उर्म्मिला अत्यन्त दयालु वाल्मीकि ने भी तुझे भुला दिया । दुःखाश्रुमोचन = दुख से आसू बहाना । राजान्त पुर = रनिवास । नन्दन वन = इन्द्र का उद्यान, यहां हरे-भरे से तात्पर्य है ।

पृष्ठ ६१ — छिन्नमूल = जड़ से कटी हुई । वचने दरिद्रता = वर्णन करने योग्य शब्दों की कमी । दुःखोदधि = दुख का समुद्र । आत्मोत्सर्ग =

त्याग । विवाहोत्त र = विवाह के बाद । नवोढत्व = नव विवाह । अन्तर्दर्शी = हृदय की बातों का ज्ञाता ।

पृष्ठ ६२—आराध्य युग्म = पूज्य दंपति, सीता एवं राम । नाना पुराण० = तुलसीदास जी ने लिखा है कि मैं अपनी कथा भिन्न-भिन्न स्थानों से लेरहा हूँ, पर ऊर्मिला के विषय में वे भी बाल्मीकिके समान ही मौन हैं ।

पृष्ठ ६३—साकेत = अयोध्या । उर्मिला का ..... है = "उत्तर राम-चरित" में जिस प्रकार लक्ष्म ण ने उर्म्मिला का चित्र हाथ से ढक लिया उसी प्रकार उसका चरित्र कवियों ने ढक रक्खा अर्थात् उसका वर्णन नहीं किया ।

पृष्ठ ६४—भर्त्सना = झिड़कना ।

पृष्ठ ६५—आवास = निवास स्थान ।

पृष्ठ ६६—भुवनातिव्यापिनी = चौदह भुवनोंमें श्रेष्ठ । चाटुकारिता = खुशामद ।

पृष्ठ ६७—उपायन = भेंट । तिरस्कारिणी विद्या = अदृश्य होने की विद्या । अनावृत्त = खुले हुए । स्थिति स्थान = जिस जगह वह खड़ा था । चरित्रदार्ढ्य = चरित्र की दृढ़ता ।

पृष्ठ ६८—अनिर्वचनीय = जिसका कथन न हो सके । मन्मथ = कामदेव । अप्रतिभ = मुग्ध । अभ्युत्थान = आदर प्रदर्शित करने के लिये खड़ा होना । धारासार = जल वर्षण । कुण्ठितकण्ठ = अवाक् । प्रेमपूर्ण .... चाहिए = यदि मधुपर्क न बन पड़े तो मीठे वचनों से ही स्वागत करना धर्म है । मधुपर्क = शीतल तथा सुगन्धित पदार्थों से बना हुआ एक प्रकार का शरबत ।

पृष्ठ ६९—आनन्दाश्रु .... चाहिए = जल के अभाव में प्रसन्नता सूचक आँसुओं से ही अर्घ्य देना चाहिए अर्थात् हर्ष प्रकट करना चाहिए । आप उसे .... करें = आसन पर विराजें । शिरीष-कलिका = सिरस के फूल बहुत कोमल होते हैं । वसन्त बीत ..... डाली = आप किस देश को शोभाहीन कर के छोड़ आए है, अर्थात् आपका आगमन कहाँ से हुआ है । समुद्र के साथ .... है = चन्द्र सदृश आपको जन्म देकर आपका वंश भी समुद्र के समान ही धन्य है । (चन्द्रमा

[illegible] से अगम्य है)। महासागर .... हूँ = अर्थात् महल में प्रवेश होना कठिन है।

पृष्ठ १००—मूर्तिहीन = शिवजी द्वारा भस्म होने के बाद से काम शरीर रहित हो गया और तब ही से उसका नाम अनंग पड़ा। अश्विनी-कुमार = सूर्य के दो पुत्र जो देवताओं के वैद्य हैं। अद्वितीय = अकेले। ओष्ठ-बन्धूक = बन्धूक (दुपहरिया) पुष्प के समान लाल ओष्ठ। दमयन्ती के .... गई = दमयन्ती के अरुण ओष्ठों से निकले हुए वाक्यों ने कानों में प्रविष्ट होकर कामदेव के बाणों के समान हृदय पर प्रभाव डाला। शरीरान्तरवर्तिनी मज्जापर्यन्त = शरीर में अत्यन्त गहरे स्थान तक।

पृष्ठ १०१—कलुषित = मलीन।

पृष्ठ १०२—बिम्ब = घेरा, मंडल। केवल .... होगी = जब शिवजी ही ने, जो केवल तीन नेत्रों वाले हैं, कामदेव की वह दुर्दशा कर डाली तो अब एक हजार नेत्रों वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर उसकी न जाने क्या दशा होगी। वचन कृत अपराध = बोलने से कष्ट देना (कोकिल की वाणी विरही को असह्य नहीं होती)। दारिद्रदीन = पत्र रूपी धन के अभाव से दुखी। रतिपति .... ने = कामदेव के वेग के कारण। [illegible] = शान्ति देने वाली।

पृष्ठ १०३—अष्टमूर्ति .... हैं = शंकर की अष्ट मूर्तियों में [illegible] भी एक है। अष्टमूर्तियाँ = जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, वायु और यजमान। याजक = यज्ञ करने वाले। कुसुमायुध = कामदेव। [illegible] ...... [illegible] .... है = सूर्य जिसका पिता है ऐसा यमराज।

पृष्ठ १०५—पहिले अपना ... कर = मेरा प्रश्न पहिला है और आप उसका उत्तर देने को बाध्य हैं, उस ऋण को बिना चुकाये अर्थात् मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर।

पृष्ठ १०६—प्रकृत विषय = उपस्थित प्रसंग। अवान्तर बातें = गौण बातें। विडम्बना = निरादर। निर्बन्ध = हठ।

पृष्ठ १०७—सुधांशु = चन्द्रमा। वाग्मिता = बोलने की शक्ति। प्रतारणा विद्या = छलने का गुण। दिक्पाल = दिशाओं के स्वामी।

पृष्ठ १०८—परिप्लुत = पूर्ण। कल्प = चार सौ युग। ऊर्ध्वमुख = अग्नि की गति ऊपर की ही ओर होती है; घमंडी। बारंबार ... है = बराबर 'नहीं' 'नहीं' करते रहना वाक्शक्ति का निरादर करना है।

पृष्ठ १०९—दिगीश्वर = दिशाओं के स्वामी, इन्द्रवरुणादिक। कुरङ्ग-कन्या = हरिणी। मत्तगजराज ... है = हरिणी का मस्त हाथी पर अनुरक्त होना उपहासास्पद है। असंगत = अयोग्य। समस्त साक्षिणी—सब बातों को प्रत्यक्ष देखने वाली।

पृष्ठ ११०—सदाचार समुद्र के कर्णधार = जिस प्रकार समुद्र पर माझी मार्ग दिखलाता है उसी प्रकार अच्छे आचार-विचार का मार्ग बतलाने वाले देवगण हैं। ईश्वर = सामर्थ्यवान्। राजमार्ग = मुख्य रास्ता। कर्दममय = कीचड़ से भरा हुआ। मैंने ....सुनाइएगा = जो बातें मैंने संक्षेप में कही हैं उनको विस्तारपूर्वक समझाइएगा।

पृष्ठ १११—निधि = लक्ष्मी। पराङ्मुखी = विमुख। मर्त्यजन्म = मनुष्ययोनि जिनका स्वभाव ही मरना है। दुराग्रह = बुरी हठ। यः कश्चित् = कोई भी; साधारण।

पृष्ठ ११२—प्राणोत्क्रमण = मृत्यु। अन्तरिक्ष = आकाश। बहिर्गत = बाहर निकले हुए। परित्राण = रक्षा। वक्रोक्ति = कहा तो कुछ जाये पर सुनने वाला उसका दूसरा ही अर्थ निकाले। अपनी ....रही = अपने निषेध से तुम कहीं प्रकारान्तर से मेरी बात स्वीकार ही तो नहीं करती। विदग्ध = विद्वान्। चतुरा ....आकर है = विदुषी स्त्रियों के मुख से व्यंग्य वचनों का निकलना स्वाभाविक ही है।